।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

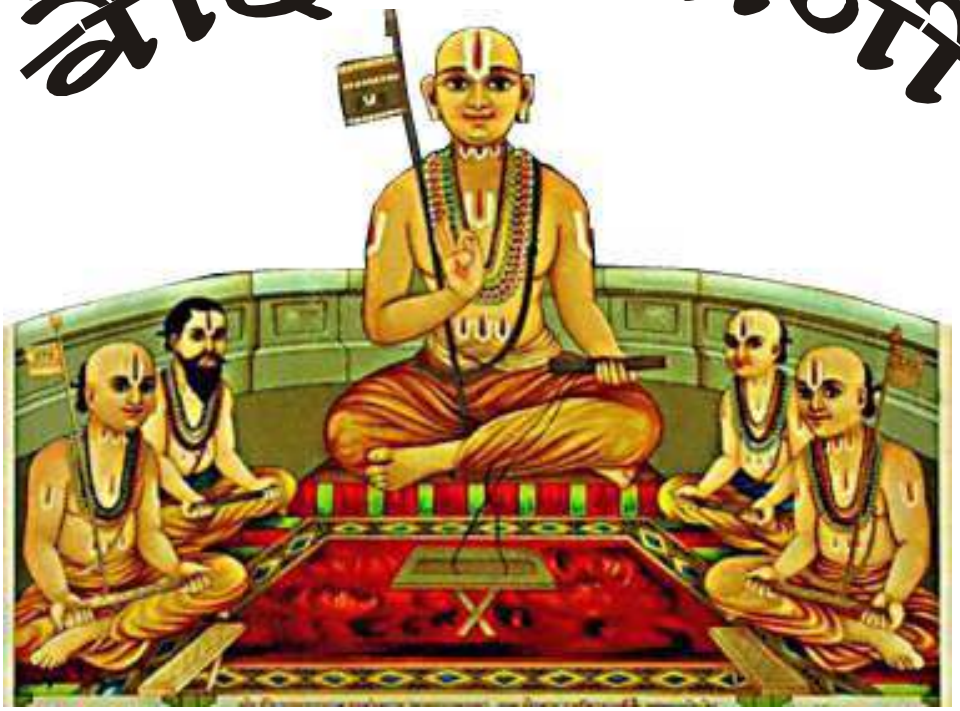

वर्ष- २५ सन्- २०१२ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- १ रामानुजाब्द त्रैमासिक प्रकाशन

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः।।

अर्थात् सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने आप में परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिए क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे करुणावश ही भोले भक्तों के हित के लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं। जैसे अपने मुख का सौन्दर्य दर्पण में दिखनेवाले प्रतिबिम्ब को भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी	३८
२.	प्रभु की अलौकिक लीला	४०
३.	मुक्ति का स्वरूप एवं भेद	४१
४.	कुम्भकार भीम की भक्ति सर्वोत्कृष्ट	४२
५.	श्रीनिवास का मौन धारण क्यों?	४४
६.	श्रीनिवास द्वारा लक्ष्मी का अन्वेषण	४६
७.	तपस्वी बने श्रीनिवास	४७
८.	पद्मावती का स्वप्न	४८
९.	श्रीलक्ष्मी कपिल संवाद	४९
१०.	महालक्ष्मी श्रीनिवास संयोग	५०
११.	भक्त से भगवान् हार गये	५२
१२.	आकाश गङ्गा	५४
१३.	श्रीबालाजी मन्दिर तिरुमलै	५५
१४.	अतिथि बने शेषशायी हरि	५७
१५.	वराह विग्रह की दिव्यता	५८
१६.	शेषाद्रिनाथ का वैभव गान	५९
१७.	श्रीलक्ष्मी नारायण का चमत्कार	६३
१८.	मन्त्र तथा आत्मनिवेदन	६७
१९.	तिरुपति यात्रा–मार्गदर्शन	६८
२०.	तिरुमल यात्रियों के लिए सूचना	७०
२१.	विरजा नदी, भोग श्रीनिवास, कोल्हापुर : एक परिचय	७२
२२.	आन्ध्र प्रदेश के काकिनाडा शहर की अदालत में श्रीनिवास का गवाही देना	७३

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ३५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । (उपनिषद्)

परब्रह्म परमेश्वर में पराशक्ति होती है। उनमें ज्ञान, बल आदि गुण स्वाभाविक होते हैं। ***'ध्याना-वस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो'*** इस वचन के अनुसार निर्मल मन से चिन्तन करने वाले योगीगण ही जिनका दर्शन करते हैं वे ही परमपिता परमेश्वर भक्तों के कार्यार्थ मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, श्रीराम, परशुराम, श्रीकृष्ण आदि रूप में भूतल पर अवतरित होते हैं। कलिदावानल से दग्ध मानवों के कल्याणार्थ वे ही भगवान परम-पावन दिव्य पर्वत वेङ्कटाद्रि पर विराज रहे हैं। प्रतिदिन प्रात:काल स्तुति करने वाले भक्त की दिव्य वाणी भगवान के प्रति इसी रूप में प्रस्फुटित होती है—

मीनाकृते कमठकोल नृसिंहवर्णिन
स्वामिन् परश्वथ तपोधन रामचन्द्र ।
शेषांशराम यदुनन्दन कल्किरूप
श्रीवेङ्कटाचलपते तव सुप्रभातम् ।।

ऐसे पद्मनाभ, पुरुषोत्तम भगवान वेङ्कटेश शरणागत भक्तों के लिए पारिजात हैं। वे भक्तजनों के सकल मनोरथ को पूर्ण करने वाले तथा अपने दिव्य सौन्दर्य से कामदेव को भी लज्जित करने वाले हैं। प्राकृत गुणों से रहित एवं अनन्त कल्याण गुणों की निधि भगवान वेङ्कटेश के चरणों में ध्वज, अमृतकलश, छत्र, वज्र, अङ्कुश, कमल, कल्पवृक्ष, शङ्ख, चक्र आदि चिह्न हैं। ये चिह्न किसी अन्य देव या मानव में नहीं होते। एक मात्र परब्रह्म परमेश्वर के चरणों को ही ये चिह्न अलङ्कृत करते हैं। इसीलिए भगवान के परमप्रिय भक्तगण वज्र, ध्वज, अङ्कुश आदि रेखाओं से अङ्कित चरणों का ही स्मरण करते हैं—

रेखामयध्वजसुधाकलशातपत्र-
वज्राङ्कुशाम्बुरुहकल्पकशङ्खचक्रैः ।
भव्यैरलङ्कृततलौ परतत्त्वचिह्नैः
श्रीवेङ्कटेश चरणौ शरणं प्रपद्ये ।।

भगवान के वे दिव्य चरण कमल भवसागर से पार करने मे सेतु के समान हैं— ***'संसारसागरसमु-त्तरणैकसेतो'।*** जैसे सेतु (पुल) पर चढ़कर लोग बड़ी नदियों एवं नालों को भी आसानी से पार कर जाते हैं वैसे ही भवसागर को जो कोई भी पार करना चाहता हो वह भगवान वेङ्कटेश के चरण-कमलों को हृदय में धारण कर ले, उससे वह भवकष्ट से अवश्य पार कर जायेगा।

जिन लोगों ने भगवान श्रीनिवास के चरणों से प्रेम किया है, वे सब परमानन्दमय सुख के भाजन बन गये हैं। दक्षिण भारत के आलवार सन्त श्री शठकोप सूरि ने सहस्रगीति में कहा है कि वेङ्कट निवासी भगवान दया के सागर हैं। भगवत्प्राप्ति के लिए उनके चरणों की शरणागति ही उपाय है। श्रीकृष्णावतार में भगवान ने अर्जुन से कहा है कि पापों के परिमार्जन के लिए प्रायश्चित्त रूप में कहे गये धर्मों को तथा कर्म ज्ञान भक्ति रूप धर्मों के लौकिक फलों को छोड़कर एक मुझे उपाय मान लो। मैं तुझे (जिन पापों के कारण भवसागर में पड़ा हुआ है उनसे) मुक्त कर दूँगा।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

वे ही भगवान श्रीकृष्ण कलिनायक वेङ्कटेश के रूप में तिरुमल में विराजमान हैं। अत: वर्तमान में भवकष्ट से मुक्ति के लिये सब को श्रीनिवास के

प्रभु की अलौकिक लीला

दक्षिण भारत में एक ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम कूर्म था। वे अपनी पत्नी और पुत्र के साथ अपने पिता की अस्थियों को गङ्गा में प्रवाहित करने के लिए काशी जा रहे थे। मार्ग में राजा तोंडमान की राजधानी पड़ती थी। कूर्म ब्राह्मण ने तोंडमान के पास जाकर आशीर्वाद दिया और उनसे कहा कि मैं अपने पिता की अस्थियों को गङ्गा में डालने के लिए काशी जा रहा हूँ। मेरे साथ गर्भवती पत्नी और एक पञ्चवर्षीय बालक है। ये दोनों पैदल चलने में असमर्थ हैं। अत: मैं चाहता हूँ कि इन दोनों को आपके आश्रय में छोड़कर काशी जाऊँ और लौटने पर इन्हें ले जाऊँ। ब्राह्मण के वचन सुनकर राजा तोंडमान ने स्वीकृति दे दी। ब्राह्मण ने अपनी गर्भवती पत्नी और पञ्चवर्षीय बालक की रक्षा का भार राजा पर सौंपकर काशी की यात्रा कर दी। राजा ने ब्राह्मण की पत्नी और पुत्र को एक भवन में रखकर सुरक्षित कर दिया। भवन में छ: मास के लिए भोजन की पूरी सामग्री रखवाकर बाहर से ताला बन्द करा दिया। ताला बन्द कराने का उद्देश्य था कि कोई भी व्यक्ति उस भवन में घुसकर ब्राह्मण की पत्नी और पुत्र को कष्ट न दे सके। ब्राह्मणी अपने पुत्र के साथ राज-भवन में सुखपूर्वक समय बीताने लगी। ब्राह्मणी के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई। राजा तोंडमान अपने राजकीय काम में लग गये। उनको ब्राह्मण परिवार का ध्यान नहीं रहा। ब्राह्मणी को भोजन के लिए जो अन्नादि सामग्रियाँ दी गयीं थीं, वे छ: मास में समाप्त हो गयीं। ब्राह्मणी अन्नादि भोजन सामग्रियों के अभाव तथा अपने कष्ट की बात भवन में ताला लगे रहने के कारण किसी से सुना नहीं सकी। फलत: तीनों की मृत्यु हो गई। कूर्म ब्राह्मण ने काशी पहुँचकर गङ्गा में अस्थि प्रवाह किया। तदनन्तर गङ्गाजल लेकर ब्राह्मण राजा तोंडमान के पास पहुँच गये। राजा तोंडमान ब्राह्मण को देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गये; क्योंकि उन्हें ब्राह्मण परिवार का स्मरण हो आया। राजा यह सोचकर विशेष चिन्तित हुए कि ब्राह्मण परिवार को छ: मास के लिए ही भोजन सामग्रियाँ दी गई थीं। समय उससे अधिक बीत गया। वे मर गये होंगे। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि आप स्नान पूजा आदि करके शीघ्र आईये। ब्राह्मण स्नान करने चले गये। तोंडमान ने अपने पुत्र को ब्राह्मण परिवार को देखने के लिए उस भवन में भेजा जहाँ ब्राह्मण परिवार सुरक्षित कर दिए गये थे। राजपुत्र ताला खोलकर अन्दर गया तो देखा कि ब्राह्मण परिवार के सभी सदस्य मरे पड़े हैं। उसने ब्राह्मण के शाप के भय से शीघ्र ही अपने पिता को सूचित कर दिया। राजा भयावह समाचार सुनकर घबड़ा गये। इसी बीच ब्राह्मण स्नान करके आ गये। राजा ने उनसे भोजन के लिए आग्रह किया; परन्तु अपने परिवार को देखने के लिए ब्राह्मण को बेचैनी थी। इसलिए उसने राजा से कहा कि मैं अपनी स्त्री और पुत्र को देखूँगा तदनन्तर भोजन करूँगा। राजा ने कहा हे ब्राह्मण देव! आपकी पत्नी पुत्रादि सहित अन्त:पुर की स्त्रियों के साथ भगवान श्रीनिवास के दर्शन के लिये वेङ्कटाचल चली गई हैं। वे सब कल या परसों लौट आयेंगे। ब्राह्मण भोजन कर विश्राम करने लगे। राजा तोंडमान अपने पुत्र को साथ लेकर शेषाचल पर श्रीनिवास के पास गये। वहाँ भगवान वेङ्कटेश के चरणों के पास बैठकर रोने लगे। भगवान श्रीनिवास ने राजा की व्याकुलता का कारण पूछा।

राजा उत्तर न देकर भगवान के चरण पकड़े हुए विलाप करते रहे। भगवान ने राजा तोंडमान के मनोभाव को समझकर कहा कि तुम ब्रह्महत्या के पाप से बहुत डर गये हो। इसलिए मेरी शरण में आकर विलाप कर रहे हो, उठो डरो मत, मैं अपने

भक्तों की बदनामी नहीं सह सकता। अत: तुम उन शवों को यहाँ मँगवाओ। राजा ने अपने पुत्र को अपनी राजधानी में भेजकर ब्राह्मण परिवार के शवों को मँगवाया। भगवान वेङ्कटेश ने उन लाशों पर अस्थि तीर्थ का जल छींट दिया, जिससे ब्राह्मण परिवार के सदस्य जीवित हो गये। भगवान ने उन्हें अपने वक्ष:स्थल में चौदहों लोक, सातों समुद्र और तैंतीस करोड़ देवताओं को दिखलाया। ब्राह्मण पत्नी यह दृश्य देखकर चकित हो गई और उसने भक्तिपूर्वक भगवान को प्रमाण किया।

भगवान वेङ्कटेश ने ब्राह्मण पत्नी को आशीर्वाद देकर तोंडमान से कहा कि तुम पुत्र सहित ब्राह्मण पत्नी को ले जाकर शीघ्र ब्राह्मण को सौंप दो। इसके अतिरिक्त प्रभु ने कहा कि मेरे भक्त ज्ञात या अज्ञात रूप में किये हुए पापों के फलों से बचने के लिए लाचार होकर मेरी शरण में आते हैं। यदि मैं उनकी रक्षा न करूँ तो वे मुझे कठोर कहकर पुकारते हैं। अत: मैं इस कलियुग में मौन धारण करूँगा। आवश्यकता के अनुसार अनन्य भक्तों से बोलूँगा। भगवान श्रीनिवास ने ऐसा कहकर पद्मावती को अपने वक्ष:स्थल पर धारण कर लिया और चतुर्भुज रूप में मौन धारणकर तोंडमान द्वारा निर्मित आनन्दनिलय (मन्दिर) में रहने लगे। तदनन्तर राजा तोंडमान विभिन्न प्रकार से भगवान की स्तुति करके ब्राह्मण की स्त्री और उनके बच्चों को साथ लिए हुए अपने राज्य में पहुँच गये। उन्होंने ब्राह्मण को उनकी स्त्री और बच्चों को सौंप दिया। ब्राह्मण ने अपनी पत्नी और बच्चों से समाचार पूछा। ब्राह्मणी ने उनसे श्रीनिवास के वक्ष:स्थल पर जिन चौदह भुवनों,सात समुद्रों और तैंतीस करोड़ देवताओं को देखा था उसके विषय में बतलाया और शेष समाचार घर चलकर सुनाने का निश्चय किया। तदनन्तर तोंडमान की प्रशंसा करते हुए ब्राह्मण अपनी पत्नी और बच्चों के साथ घर लौट गये। ●

मुक्ति का स्वरूप एवं भेद

संसार के बन्धन से मुक्त होकर श्रीमन्नारायण को प्राप्त कर लेना ही मुक्ति है। मुक्ति चार प्रकार की होती हैं—सारुप्य, सालोक्य, सामीप्य और सायुज्य। प्राकृत शरीर छोड़कर भगवान नारायण के समान स्वरूप धारण कर लेना सारुप्य मुक्ति है।

भगवान नारायण चतुर्भुज हैं। वे भुजाओं में क्रमश: चक्र, शङ्ख, गदा और पद्म धारण किये हुए रहते हैं। उनके शरीर का वर्ण श्याम है। शिर पर दिव्यरत्न के मुकुट है। कानों में मकराकृति कुण्डल, बाहों में बाजूबन्द, गले में कौस्तुभमणि, शरीर पर पीताम्बर और वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित हो रहे हैं। जीवात्मा प्राकृत शरीर छोड़कर भगवान नारायण के स्वरूप को धारण कर लेता है; परन्तु कौस्तुभमणि और श्रीवत्स का चिह्न मुक्तात्मा को प्राप्त नहीं होते हैं। गीधराज जटायु एवं गजेन्द्र ने अपने प्राकृत शरीर को छोड़कर प्रथम सारुप्य मुक्ति प्राप्त किया था।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा।
भूषण बहु पट पीत अनूपा।।
श्यामगात विशाल भुजचारी।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात्।
प्राप्तो भगवतोरूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः।। (भागवत)

दूसरी मुक्ति सालोक्य है। लीलाविभूति से ऊपर विरजा के उस पार त्रिपादविभूति है जिसे वैकुण्ठ कहते हैं। उस वैकुण्ठ में पहुँच जाना सालोक्य मुक्ति है। दिव्यधाम वैकुण्ठ में सहस्र स्तम्भयुक्त मण्डप में शेषशय्या पर विराजमान श्रीमन्नारायण की सन्निधि में पहुँच जाना सामीप्य मुक्ति है। भगवान श्रीमन्नारायण की सेवा में सदा के लिए संलग्न हो जाना सायुज्य मुक्ति है। सारुप्य मुक्ति के बाद जीवों को क्रमश: सालोक्य, सामीप्य और सायुज्य मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ●

कुम्भकार भीम की भक्ति सर्वोत्कृष्ट

राजा तोंडमान पर भगवान श्रीनिवास की विशेष कृपा हुई। भगवान ने ब्राह्मण परिवार को जीवित कर राजा के मन को अपनी ओर खींच लिया। राजा तोंडमान अपने राज्य से पूर्ण विरक्त हो गये। उनके मन में यह भाव जागृत हो गया कि मैं तिरुमल में रहकर अपने हाथों भगवान वेङ्कटेश की सेवा करूँ। अत: उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर कहा कि मैं भगवान वेङ्कटेश की सेवा में जाना चाहता हूँ। राजा ने शुभ मुहूर्त्त में अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके अपनी पत्नी से कहा कि तुम सदा श्रीनिवास भगवान का ध्यान करती हुई अपना समय बिताना। मैं शेषाचल पर जा रहा हूँ। भक्त तोंडमान राज्य का आसक्ति रूप बन्धन काटकर भगवान श्रीवेङ्कटेश की सेवा में उपस्थित हो गये।

श्रीतोंडमान जी भक्तिपूर्वक भगवान की सेवा करने लगे। वे प्रतिदिन सहस्रनाम से भगवान श्रीनिवास के चरण कमलों में तुलसीदल समर्पित करते थे। भगवान के दिव्य गुणों का स्मरण करते हुए प्रेम मग्न रहते थे। भक्त तोंडमान के अतिशय प्रेम समझकर भी भगवान श्रीनिवास मौन रहते थे। भक्त की चाह थी कि भगवान का मधुर वचन सुनें; परन्तु भगवान कुछ भी बोलना नहीं चाहते थे, उससे तोंडमान को अपार दु:ख हुआ। उसने क्रोधावेश में भगवान के प्रति अनेक कटु वचन का प्रयोग किया। वह अन्न जल त्यागकर श्रीनिवास का ध्यान करने लगा। साथ ही सहस्रनाम से भगवान की अर्चना भी करता जा रहा था।

एक भीम नाम का कुम्हार था। उसके मनमें 'मैं श्रीनिवास की भक्ति करूँ' ऐसा मनोभाव जगा। उसने प्रतिदिन मिट्टी का पुष्प बनाकर और बिल मार्ग से मन्दिर में प्रवेश कर श्रीनिवास के चरण-कमलों में उन पुष्पों को समर्पण करना प्रारम्भ कर दिया।

भगवान के चरणों में मिट्टी के पुष्पों को समर्पित करने से मिट्टी का अंश उनके चरणों में लग जाता था। तोंडमान ने देखा कि मैं श्रीनिवास के चरणों में जिन तुलसीदलों को समर्पित करता हूँ वे तुलसीदल हटा दिये गये हैं और मिट्टी के फूल भगवान के चरणों में समर्पित है । उससे तोंडमान समझा कि भगवान मेरे ऊपर विशेष क्रोधावेश में हैं। अत एव मेरे द्वारा समर्पित तुलसीदलों को हटा दिये हैं। तोंडमान अपने दोनों हाथों से भगवान श्रीनिवास के चरण-कमलों को पकड़े हुए निरन्तर ध्यान में संलग्न हो गये। उन्होंने अन्न, जल का भी परित्याग कर दिया। इसी रूप में कुछ समय व्यतीत होने पर भगवान ने आकाशवाणी की कि तोंडमान! तुम उठो मैंने तुम्हारे किये हुए उपकार का प्रत्युपकार कर दिया है। अत: तुम इस तरह दुराग्रह पूर्ण व्यवहार से मुझे पीड़ित क्यों करते हो। तुम अपने राज्य लौट जाओ और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो। भगवान श्रीनिवास के वचन सुनकर तोंडमान ने उनसे कहा कि आपके कृपा से मुझे सब सुख प्राप्त है। आपके दर्शन से मुझे यह बात समझ में आ गई है कि राज्य, पुत्र, धन, धान्य, वाहन आदि सब अनित्य हैं। अत: मुझे किसी प्रकार का भोग नहीं चाहिये। मेरा मन एक मात्र आपके चरण-कमलों में लगा हुआ है। आप कृपाकर मेरा उद्धार कर दें। मैं आपकी जो पूजा करता हूँ वह आपको पसन्द नहीं है। इसलिए मेरे द्वारा समर्पित तुलसीदलों को दूर हटाकर मिट्टी से बने पुष्पों को स्वीकार करते हैं। मैं अनेक जन्मों से आपकी सेवा करता आ रहा हूँ, अत: मैं आपका श्रेष्ठ भक्त हूँ। मुझसे बढ़कर आपका बड़ा भक्त कोई नहीं है। मैंने आपके लिए एक विशाल मन्दिर का निर्माण भी करवाया। तोंडमान के वचन सुनकर भगवान श्रीनिवास ने व्यङ्गात्मक वचन से कहा कि मैं बहुत काल से अपने भक्तों को वचन से सन्तुष्ट करता था। तुमने मुझे उससे वञ्चित कर दिया। तुम अपने को

भक्तों में अग्रगण्य इसलिए कह रहे हो कि तुम मेरे अनेक कार्यों में विघ्न उपस्थित करते आये हो। भगवान श्रीनिवास सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमात्मा हैं। वे किसी भी जीव के अन्तरङ्ग वृत्ति को समझते हैं। इसीलिए तोंडमान के प्रति भगवान के कठोर वचन युक्ति-सङ्गत हैं। प्रभु की लीला के रहस्यों को समझना सामान्य मानव के लिए असम्भव है। तोंडमान प्रभु के कठोर वचन को सुनकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसके हृदय में अपार दु:ख उमड़ आया। उसकी इस दशा को देखकर करुणासिन्धु श्रीनिवास ने तोंडमान से कहा कि तुझे इस तरह विलाप करने से कोई लाभ नहीं है। यहाँ से एक योजन की दूरी पर एक भीम नाम का कुम्हार मेरा श्रेष्ठ भक्त है। यदि तुम वहाँ जाकर उसके दर्शन करोगे तो समझ जाओगे कि श्रेष्ठ भक्त कौन है और भक्ति किसे कहते हैं।

भगवान ने भक्त को मोक्ष दिया

भगवान के आदेशानुसार तोंडमान उनके चरण-कमलों को छोड़कर कुम्भकार भक्त भीम के पास पहुँच गये। वे भक्त भीम को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए मूर्छित हो गये। मूर्छित तोंडमान को देखकर भीम उन्हें उठाया और उसकी पत्नी तमालिनी ने एक मिट्टी के वर्तन में जल लाकर तोंडमान के मुख पर छिड़क दिया। भीम और उसकी पत्नी ये दोनों तोंडमान की मूर्छा को दूर करने के लिए उपचार कर रहे थे उसी समय दोनों के बीच भगवान श्रीनिवास प्रत्यक्ष हो गये। सपत्नीक भक्त भीम ने भगवान श्रीनिवास के चरणों पर गिरकर उनकी प्रार्थना की, उसी समय तोंडमान की मूर्च्छा भी भङ्ग हो गयी। उन्होंने भगवान श्रीनिवास और सपत्नीक भीम को देखा। तोंडमान खड़ा होकर हाथ जोड़ लिया और श्रीनिवास का ध्यान करने लगा। भीम की पत्नी तमालिनी ने भगवान श्रीनिवास से कहा कि हे परमात्मन् हमलोग बहुत गरीब हैं। हम विदुर, शबरी और सुदामा की तरह सेवा नहीं कर सकते हैं। आपका ध्यान करने के लिए मन्त्र भी नहीं जानते हैं। आपको सन्तुष्ट करने के लिए यज्ञ-याग आदि करने में भी असमर्थ हैं, अत: आप कृपाकर हमें दासानुदास के रूप में स्वीकार करें। हमनें भोजन तैयार किया है आप कृपाकर इसे स्वीकार करें। तमालिनी ने गरम जल लाकर भगवान के चरणों को धोया और उनकी पूजा कर चरणोदक सिर पर धारण किया। पुन: एक श्वेत वस्त्र से भगवान के चरणों को पोछकर उन्हें एक मिट्टी के पीढ़े पर बिठाया और उनके सामने तैयार भोजन परोस दिया। भगवान श्रीनिवास प्रेमपूर्वक भोजन करने लगे। इतने में वैकुण्ठ से एक विमान आया, भगवान ने अपने गरुड़ को बुलाकर कहा कि तुम शीघ्र पद्मावती को मेरे पास पहुँचा दो। गरुड़ जी ने प्रभु के आदेश से पद्मावती को वहाँ पहुँचा दिया। भगवान ने पद्माावती सहित कुम्भहार दम्पत्ति को दर्शन दिया और सपत्नीक भीम को शङ्ख, चक्रादि से विभूषित कर वैकुण्ठ भेज दिया।

तोंडमान सपत्नीक भक्त भीम को विमान पर बैठकर वैकुण्ठ जाते हुए देखकर अत्यन्त लज्जित हो गये। उन्होंने श्रीनिवास के चरण-कमलों को पकड़कर प्रार्थना पूर्वक कहा कि हे भगवन्! मैंने गर्व से यह जो आपसे कहा था कि मुझसे बढ़कर बड़ा भक्त कोई नहीं है, वह मेरी भूल थी। मैंने अज्ञानवश वैसा कहा था। अब भीम भक्त को देख कर मेरा गर्व चूर हो गया। इससे पूर्व जो मुझसे अपराध हुए हैं उन्हें क्षमाकर मेरा भी उद्धार करें। भक्तवत्सल, दयानिधि श्रीनिवास ने तोंडमान के दीन वचन सुनकर उसे भी मुक्त कर दिया, तदनन्तर भगवान पद्मावती के साथ आनन्दनिलय में प्रवेश कर गये।

अवश्यमन्नं भोज्यं ते भक्त्या दत्तं तमालिनि। इत्येवमुक्त्वा भगवान्भक्तवात्सल्यवारिधिः।।
रमासमेतो रमणीयविग्रहः कुलालवर्येण कुलालजायया।
अभुङ्क्त दत्तं च तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा तयोश्च प्रददौ पदं स्वकम्।।

श्रीनिवास का मौन धारण क्यों?

भगवान के वक्ष:स्थल पर भृगु के चरण प्रहार से रुठकर लक्ष्मीजी अलग हो गयी थीं। श्रीलक्ष्मी का वियोग श्रीनिवास को बराबर खटकता था। भगवान वेङ्कटेश ने अपने विवाह में कुबेर से ऋण लिया था। उसका ब्याज देते जाना था; परन्तु लक्ष्मीविहीन होने के कारण श्रीनिवास के पास धन नहीं था, जिससे वे ब्याज चुका सके। इसलिए भगवान ने यह निर्णय लिया कि मैं किसी प्रकार लक्ष्मी को लाकर अपने पक्ष:स्थल में रखूँगा। यह सोचकर भगवान मौन रहते थे। एक दिन पद्मावती ने भगवान के पैरों पर गिरकर प्रार्थना की और कहा कि हे नाथ! मुझ पर आपका जो अपार प्रेम है उससे मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मैं सदा आपका ध्यान करती हुई आपकी सेवा में संलग्न रहने से अत्यन्त हर्षित रहती हूँ; परन्तु ये मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है कि आप मौन धारण क्यों किये हुए हैं? कृपाकर मुझे इसका कारण स्पष्ट करें। ऐसा कहकर पद्मावती भगवान श्रीनिवास के चरण-कमलों को पकड़ ली।

परम दयालु श्रीनिवास ने अपने दोनों हाथों से पद्मावती को उठाकर अपने गले से लगा लिया और निम्न प्रकार से पद्मावती से कहा कि मैं प्रलय-काल में निर्विकार निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म रूप में रहता हूँ। महालक्ष्मी की सहायता से सृष्टि, पालन एवं संहार आदि कार्य करता हूँ। यह जो जगत् कार्यरूप में प्रस्तुत है यह लक्ष्मी की देन है। मेरे सारे कार्य महालक्ष्मी के सहयोग से ही होते हैं। जैसे चकोर की दृष्टि चन्द्रमा पर लगी रहती है, वैसे ही सब काल और सब दशाओं में महालक्ष्मी मेरे वक्ष:स्थल में रहतीं थीं। जब भृगुजी ने मेरे वक्ष:स्थल पर पाद प्रहार किया तब लक्ष्मी अतिक्रोधित होकर मुझसे अलग होकर करबीरपुर चलीं गईं। मुझे उसके बिछुड़ जाने के कारण विशेश हानि अनुभव हो रहा है। मेरा ज्ञान भी नष्ट हो गया है। उससे अलग हो जाने के कारण ही मैं दिव्यलोक छोड़कर इस पहाड़ पर चला आया हूँ। यहाँ इमली के पेड़ की जड़ पर जो बल्मीक है मैं उसमें रहता था उसी समय गाय के दूध पीने के कारण मुझे कुल्हाड़ी की चोट भी सहनी पड़ी।

मेरी पत्नी महालक्ष्मी नहीं थीं इसलिए उपवन में मैं तुम्हें देखकर तुमसे विवाह करने के लिए कहा था। उसके कारण तुमने अपनी सखियों के द्वारा मुझ पर पत्थर फेंकवाया। लक्ष्मी के अभाव में कुबेर के पास से ऋण लेकर मैंने तुमसे विवाह किया। विवाह के समय तुम्हारे पिता आकाश-राजा और तुम्हारे भाइयों ने मुझे जो धन दिया था वह ऋण चुकाने के लिए पर्याप्त नहीं था। अब मुझे यह चिन्ता हो रही है कि लक्ष्मी से बिछुड़ कर रहने के कारण लोग मुझे पत्नीद्रोही कहेंगे और कुबेर का ऋण भी चुकाने में मैं असमर्थ रहूँगा, इसी कारण से मैं मौन रहता हूँ। तुम मुझे कोई उपाय बताओ।

पद्मावती ने हाथ जोड़कर भगवान् से कहा कि आप सर्वज्ञ हैं। चौदहों भुवन में कोई भी व्यक्ति आपकी आज्ञा के प्रतिकूल नहीं चल सकता। आप कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम समर्थ हैं। इसलिए मैं आपको उपाय क्या बताऊँ। फिर भी मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ कि सृष्टि, पालन आदि समस्त कार्यों में आपको सहयोग करने वाली जो महालक्ष्मी देवी हैं उन्हें आप किसी प्रकार सन्तुष्ट कर बुला लाइये।

पद्मावती के वचन सुनकर भगवान श्रीनिवास ने कहा कि जिस समय मैंने तुमसे विवाह कर लिया उस समय से हम दोनों यहाँ बड़े आनन्द से समय

व्यतीत कर रहे हैं। तुम मुझसे अपार प्रेम करती हो। अब मैं लक्ष्मी को लाकर अपने वक्ष:स्थल में रख लूँगा। तो क्या तुम्हें कष्ट नहीं होगा? पद्मावती ने भगवान श्रीनिवास से कहा कि यदि महालक्ष्मी की कृपा न होती तो मेरा विवाह आपके साथ नहीं होता। उनके अनुग्रह का ही फल है जो आज मैं आपकी सेवा कर रही हूँ। महालक्ष्मी ने जो मेरा उपकार किया है उसका प्रत्युपकार मैं अनेक जन्मों तक उनकी सेवा करके भी नहीं कर सकती हूँ। मैं सदा उनकी सेविका बनी रहूँगी। अत: आप कृपाकर मुझे भी वहाँ ले चलें, जिस कोल्हापुर में लक्ष्मी रहती हैं। मैं उसे प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करके उनके चरणों को पकडूँगी और किसी भी तरह से उन्हें मनाकर यहाँ लाऊँगी।

पद्मावती के वचन सुनकर भगवान वेङ्कटेश ने कहा कि पद्मावति! मैं अच्छी तरह तुम्हारे निर्मल मन को जानता हूँ। तुम चिन्ता मत करो। तुम वकुलमालिका के साथ इसी निवास स्थान पर रहो। मैं अभी जाता हूँ, सागर कन्या लक्ष्मी को अवश्य बुला लाऊँगा। भगवान श्रीनिवास ने कोल्हापुर जाने का निश्चय कर लिया।

महालक्ष्मी सर्वज्ञा हैं। वह श्रीनिवास भगवान के निश्चय को जानकर सोचने लगीं कि वे मुझे शेषाचल ले जाने के लिए निश्चय करके यहाँ आ रहे हैं। मुझे वेङ्कटाद्रि जाना अच्छा नहीं है; क्योंकि मेरी सम्मति से श्रीनिवास के साथ पद्मावती का विवाह हुआ है। मुझे वहाँ चले जाने से पद्मावती को विशेष कष्ट होगा। ऐसा सोचकर लक्ष्मी जी करबीरपुर छोड़कर पाताल लोक चली गयीं। वहाँ कपिल महर्षि तपस्या कर रहे थे। उन्होंने लक्ष्मी देवी को देखकर उनका समाचार पूछा और समादर किया। महालक्ष्मीजी अपने पतिदेव श्रीनिवास का ध्यान करती हुई उसी क्षेत्र में तपस्या करने लगीं।

तिरुच्चानूर

तिरुपति से ३ मील पर तिरुच्चानूर नगर है। इसे मङ्गापट्टनम् भी कहते हैं। यहाँ पद्मसरोवर नाम का पुण्यतीर्थ है। सरोवर के पास ही पद्मावती का मन्दिर है। पद्मावती लक्ष्मीजी का स्वरूप मानी जाती है। उनको यहाँ 'अलवेलुमङ्गम्मा' कहते हैं। यह मन्दिर भी विशाल है।

भगवान वेङ्कटेश जब वेङ्कटाचल पर निवास करने लगे, तब उनकी नित्य प्रिया श्रीलक्ष्मीजी तिरुच्चानूर में आकाशराजा के यहाँ कन्या रूप से प्रकट हुईं। वे पद्मसरोवर में एक कमलपुष्प में प्रकट हुई बताई जाती हैं, जिन्हें आकाशराजा ने अपने घर ले जाकर पुत्री बनाकर पालन किया। उनका विवाह श्रीबालाजी (वेङ्कटेश स्वामी) के साथ हुआ (पद्मावती के प्रकट होने की दूसरी कथा भी उपलब्ध होती है)। कहा जाता है कि तिरुच्चानूर में शुकदेवजी ने भी तपस्या की थी।

वेङ्कटगिरि

विल्लुपुरम् गुडूर लाइन में रेनीगुंटा से ३० मील (कालहस्ती से १५ मील) दूर वेङ्कटगिरि स्टेशन है। स्टेशन से वेङ्कटगिरि बाजार दो मील है। यहाँ पर कोदण्डराम, हनुमान, चेंगलराजस्वामी, श्रीवरद-राज (विष्णु) भगवान के मन्दिर है। राजमहल के पास ग्रामदेवी पोलेरअम्बाका मन्दिर है। शिव तथा विशालाक्षी का भी मन्दिर है। मन्दिर के पास कैवल्या नामक छोटी नदी प्रवाहित होती है।

श्रीनिवास द्वारा लक्ष्मी का अन्वेषण

भगवान वेङ्कटेश तिरुमल से लक्ष्मी की खोज में निकलना चाहते हैं। उन्होंने उत्तम रेशमी वस्त्र एवं आभूषणों से अलङ्कृत होकर पद्मावती से कहा कि मैं शीघ्र यहाँ से प्रस्थान कर रहा हूँ। लक्ष्मी को खोजकर अवश्य लाऊँगा। तदनन्तर वे गरुड़ पर चढ़कर करबीरपुर के लिए प्रस्थान कर गये। वहाँ पहुँचने पर उन्हें लक्ष्मी का साक्षात्कार नहीं हुआ। उससे श्रीनिवास की व्याकुलता बढ़ गई। उन्होंने सोचा कि मैं पद्मावती से विवाह करके बहुत समय तक महालक्ष्मी से दूर रहा, इसलिए वह मुझसे विरक्त हो कोल्हापुर से कहीं बाहर चली गई है। सम्भवत: मेरी प्राप्ति के लिए इसी वन में तपस्या कर रही होगी। भगवान श्रीनिवास ने व्याकुलता पूर्वक कोल्हापुर के समस्त जङ्गलों में लक्ष्मी को ढूँढा; परन्तु लक्ष्मी कहीं नहीं मिली। तदनन्तर वे पर्वतीय क्षेत्रों में लक्ष्मी को ढूँढ़ने लगे।

त्रेता में जैसे भगवान श्रीराम सीता अन्वेषण काल में पक्षियों एवं मृगों से सीता का पता यह कहकर पूछते चलते थे—***'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी'।।***

वैसे ही भगवान वेङ्कटेश पर्वत, वृक्ष आदि से लक्ष्मी का पता पूछते चलते हैं। हे गिरिवर!, हे तरुवर!, हे मुनिवर!, हे सुरवर! आपलोगों ने कहीं लक्ष्मी को देखा है। यदि देखा है तो उसका स्थान मुझे बतायें। उनलोगों से लक्ष्मी का पता नहीं मिलने पर प्रभु विलाप करने लगे।

पुन: उन्होंने पर्वत पर रहने वाले भक्तों, मुनियों एवं गन्धर्वों को प्रणाम करके पूछा कि आपलोगों ने लक्ष्मी को देखा है? उनलोगों ने उत्तर दिया कि अगर इस क्षेत्र में कहीं भी लक्ष्मी जी होतीं तो हमलोगों को मालूम अवश्य होता। भगवान श्रीनिवास वहाँ से करबीरपुर लौट गये। वहाँ लक्ष्मी की प्रतिमा थी जिसका पूजन अगस्त्य जी करते थे। भगवान ने उसका अभिषेक किया और वे उस प्रतिमा के सामने बैठकर दस हजार वर्ष तक तप करते रहे; परन्तु लक्ष्मी वहाँ प्रकट नहीं हुई। वहाँ भगवान के समक्ष आकाशवाणी हुई कि हे देव! यहाँ बहुत काल तक तपस्या करने पर भी लक्ष्मी प्रत्यक्ष नहीं होंगी। यहाँ से चालीस योजन की दूरी पर स्वर्णमुखी नदी है और उससे पूर्व में पद्म-सरोवर है। आप देवलोक से सहस्रदल का एक कमल लाकर उस पद्म-सरोवर में स्थापित करें और उससे पूर्व में सूर्य को प्रतिष्ठित कीजिए। तदनन्तर उस कमल पर दृष्टि स्थिर करके आप लक्ष्मी के लिए तपस्या कीजिए। उससे सिन्धु कन्या लक्ष्मी उत्पन्न होंगी और आपके वक्ष:स्थल में पहुँच जायेंगी। आकाशवाणी सुनते ही श्रीनिवास की आँखें खुल गई, वे चारों ओर देखने लगे; परन्तु किसी व्यक्ति पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ी। भगवान वेङ्कटेश ने यह निश्चय किया कि यह आकाशवाणी है। वे वहाँ से गरुड़ पर चढ़कर शेषाचल लौट आये। वहाँ उन्होंने एक साधारण राजकुमार का वेश बनाकर पुष्करिणी में स्नान किया। स्नान के समय बैखानश वंश वाले ब्राह्मणों ने सङ्कल्प पूर्वक मन्त्रोच्चारण किया। तदनन्तर श्रीनिवास भगवान शेषाचल से यात्रा कर पद्मसरोवर के पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने वायुदेव को बुलाकर कहा कि तुम स्वर्गलोक में जाओ। वहाँ की मन्दाकिनी में सहस्रदल वाला कमल है उसे इन्द्र से माँगकर ले आओ। श्रीनिवास के वचन सुनकर वायु ने कहा कि इसी भूतल पर सुवर्णमुखी के पास अनेक सहस्रदल वाले कमल हैं। उनमें से एक कमल उखाड़ कर मैं ले आऊँगा। भगवान श्रीनिवास ने वायु से कहा कि मुझे आकाशवाणी ने कहा है कि देवलोक से प्राप्त सहस्रदल कमल से सिद्धि प्राप्त होगी। अत: देवलोक से कमल लाने का प्रयास करो। भगवान श्रीनिवास की आज्ञा मानकर

वायुदेव स्वर्गलोक में चले गये। वहाँ उन्होंने देवराज इन्द्र से भगवान की आज्ञा सुनाई। इन्द्र ने मन्दाकिनी से एक सहस्रदल वाला कमल उखाड़ कर दे दिया।

वायु से सहस्रदल कमल प्राप्त होने पर भगवान श्रीनिवास ने उनसे कहा कि मैं यहाँ तपस्या करने का निश्चय किया हूँ। तुम यह समाचार किसी को मत देना। वायुदेव लौट गये, भगवान श्रीनिवास ने पद्मसरोवर में उस कमल को स्थापित किया और आकाशवाणी के अनुसार उससे पूर्व सूर्य को प्रतिष्ठित कर कमल पर ध्यान रखते हुए तपस्या करने लगे। लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिए लक्ष्मी स्तोत्र का वे पाठ भी करते थे।

●

तपस्वी बने श्रीनिवास

भगवान श्रीनिवास ने मानवीय लीला करते हुये पद्मसरोवर के तट पर एक सामान्य राजकुमार के रूप में तपस्या प्रारम्भ कर दिया। वायुदेव को उन्होंने मना कर दिया था कि किसी को भी मेरी तपस्या के सम्बन्ध में नहीं बताना।

देवराज इन्द्र को किसी तरह ज्ञात हुआ कि एक राजकुमार भूलोक में कठोर तपस्या कर रहा है। उन्हें प्रभु की रहस्यमयी लीला का तनिक भी आभास नहीं हुआ। अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने सोचा कि यदि राजकुमार की तपस्या निर्विघ्न पूरी हो गई तो मेरा इन्द्र पद खतरे में पड़ जायेगा। अपनी योजना के अनुसार उन्होंने रम्भा, उर्वशी आदि अप्सराओं को राजकुमार स्वरूप धारण करने वाले तपस्वी प्रभु श्रीनिवास के पास उनकी तपस्या भङ्ग कराने के उद्देश्य से भेजा। अप्सराएँ पद्मसरोवर के तट पर गयीं और यथाशक्ति प्रभु की तपस्या भङ्ग कराने का प्रयास किया। ठीक उसी प्रकार भगवान नर-नारायण जब वदरिकाश्रम में तपस्या कर रहे थे, तो इन्द्र ने कुचक्र रचा था। उस समय भी प्रभु ने अपनी मनो-निग्रह शक्ति का प्रदर्शन करते हुये इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं से भी खूबसूरत एक अप्सरा अपनी जङ्घा से उत्पन्न कर दिया था और उनके ऐश्वर्य का ज्ञान कर सङ्कुचित हो देवदासियाँ सुरपुर लौट गयीं थीं। आज यहाँ भी भगवान श्रीनिवास ने अपनी लीला शक्ति का आंशिक प्रयोग कर एक विश्वमोहिनी सुन्दरी सृजन किया। इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराएँ इस सुन्दरी को देखकर कहने लगी—अहो! इस राजकुमार महात्मा ने ऐसी सुन्दरी का सृजन कर दिया कि हम सब इसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। हम हार गयीं। इस महात्मा की महिमा बिना जाने इनके तपोभङ्ग करने का प्रयास करना हमारी मूर्खता है। ऐसा सोचकर वे सब सभीत प्रभु श्रीनिवास को प्रणाम कर वहाँ से इन्द्र के पास आकर कहने लगीं—हे स्वामि! हम सब उस राजकुमार का तपोभङ्ग नहीं कर सकती हैं। हमने उन्हें एक साधारण राजकुमार समझ लिया; परन्तु वे साक्षात् विष्णु के सिवा और कोई नहीं हैं।

अप्सराओं के मुख से उपर्युक्त ये वचन सुनकर इन्द्र बहुत दु:खित हुए और वे स्वयं अपने लोक से चलकर सत्वर श्रीनिवास के पास जा पहुँचे। प्रभु को प्रणाम कर उन्होंने सविनय कहा—हे परमात्मन्! अनजाने में किये हुए मेरे अपराधों को क्षमा करें। यह सुनकर करुणासागर भगवान् श्रीनिवास ने इन्द्र को क्षमा कर आश्वस्त किया। पश्चात् विश्वमोहिनी से कहा कि तुम प्रजा की पूजा स्वीकार करती हुई यहीं रह जाओ। पुन: स्वयं वे तपस्या में संलग्न हो गये।

यहाँ हमें समझना चाहिये कि श्रीनिवासावतार में भी भगवान ने तपस्वी का रूप धारण कर इन्द्र को ज्ञान कराया और अपनी लीला को सरस बना दिया।

●

पद्मावती का स्वप्न

जब श्रीनिवास पद्मावती को बकुला देवी के पास छोड़कर चले गये तभी से शेषाचल पर उसने निद्रा और भोजन का परित्याग कर पूरा समय श्रीनिवास के ध्यान में ही लगा दिया था । एक दिन वह प्रभु का चिन्तन करते हुए सोचने लगी। मेरे नाथ मुझे यहाँ छोड़कर चले गए। उनको गए बाईस वर्ष बीत गए। न जाने वे कहाँ रहते हैं। मुझे यह भी मालूम नहीं कि वे लक्ष्मी के साथ सरस वार्तालाप करते हुए मेरा विस्मरण कर गए या लक्ष्मी को कहीं भी न पाकर विलाप कर रहे हैं? लक्ष्मी वहाँ क्या नहीं रहती होगी? इस प्रकार सोचते हुए पद्मावती अचेत हो गयी। उसने अचेतावस्था (स्वप्न) में श्रीनिवास को तपस्वी के रूप में देखा— वह सहसा जाग उठी और भयकम्पित हो बकुलादेवी से कहने लगी—हे माँ! स्वप्न में मैंने अपने नाथ (स्वामी) को तपस्वी के वेश में देखा है, इस कारण अत्यधिक डर लग रहा है।

पद्मावती को ऐसी बातें सुनकर बकुला देवी ने उसे धीरज बँधाया और कहा कि तुम्हारा स्वप्न अशुभ फल देने वाला नहीं है, अपितु इससे यह परिलक्षित हो रहा है कि तुम्हारे नाथ लक्ष्मी के साथ शीघ्र यहाँ आने वाले हैं।

कपिल आश्रम में लक्ष्मी

कपिल मुनि के आश्रम में रहने वाली लक्ष्मी एक दिन विचार करने लगीं; मेरे स्वामी पद्मसरोवर में मेरे लिए तपस्या कर रहे हैं और उनके लिए शेषाचल पर पद्मावती अत्यन्त दु:खित है, ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने इन दोनों को कष्ट पहुँचाया है। इस परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिए समझ में नहीं आता।

लक्ष्मी इसी प्रकार सोचती हुई कपिल मुनि के पास जाकर कहने लगी—हे मुनिवर! श्रीविनवास ने पद्मावती से विवाह किया था और अब उसे शेषाद्रि पर छोड़कर मेरे लिए पद्मसरोवर के पास तपस्या कर रहे हैं, इस विषम परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिए कृपया आप बतायें।

लक्ष्मी की उपर्युक्त बातें सुनकर कपिल मुनि ने उनसे पूछा—माँ! हर युग में सर्वदा परमात्मा के वक्ष में रहने वाली तुम अब उनसे बिछुड़ कर क्यों अलग रहती हो? यह सुनकर लक्ष्मी ने दु:खित स्वर में जवाब दिया—आपके कथनानुसार मैं सदा उन्हीं के साथ उन्हीं के वक्ष में बड़े आनन्द से रहती थी। एक बार मूढ़ भृगु ने श्रीनिवास के वक्ष:स्थल पर पाद प्रहार किया जहाँ मेरा निवास था। भृगु का यह व्यवहार मुझे असह्य हो गया। मैं यह समझकर कि उसके पाद प्रहार से मेरा निवास स्थान अपवित्र हो गया है तथा जो परपुरुष से स्पर्शित है वहाँ रहने से मेरा पातिव्रत्य धर्म कलुषित हो जायेगा। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर क्रोधावेश में हमने वैकुण्ठ का परित्याग कर दिया और तब से मैं श्रीविष्णु से बिछुड़कर कोल्हापुर आकर रहने लगी।

लक्ष्मी के वचन सुनकर कपिल मुनि ने कहा— हे माँ! तुम सर्वज्ञ हो, भृगु कोई पराया नहीं है। वह तुम्हारा पुत्र लगता है; हमें पता नहीं कि तुम्हारे पति ने तुमसे यह विषय कहा था या नहीं। यदि भृगु उत्तम व्यक्ति नहीं होता तो श्रीविष्णु उसको क्षमा कभी नहीं करते। जब तुम्हारे पतिदेव ने उसे क्षमा कर दिया, तब तुम्हें भी उनसे सहमत हो जाना चाहिए था। उनके कार्य का इस तरह तिरस्कार करना धर्म सम्मत नहीं है। तुम अनेक पुण्य कर्म तथा बड़ी तपस्या करके परमात्मा के वक्ष:स्थल में निवास पायी हो । कोई साधारण व्यक्ति उनके

वक्ष:स्थल पर निवास नहीं पा सकता है। इसलिए इस कारण से तुम्हारा अपने पति से बिछुड़े रहना अनुचित है कि भृगु ने वहाँ पाद प्रहार किया था। भृगु बड़ा भक्त है और उसने यह प्रमाणित करने के लिए श्रीविष्णु के वक्ष पर पैर मारा था कि त्रिमूर्ति में केवल श्रीविष्णु ही सत्वगुण सम्पन्न हैं। तुम यह बात नहीं समझ सकी। तुमने ऐसा समक्षा कि भृगु ने गर्व से तुम्हारे पति के वक्ष पर पाँव मारा था।

श्रीनिवास से रुठकर तुम्हारे चले आने के बाद वे स्वयं बैकुण्ठ छोड़कर वेङ्कटाचल पर जा पहुँचे। वहाँ कुछ काल तक कष्ट का अनुभव किया। यह सब उनकी लीला मात्र है।

●

लक्ष्मी-कपिल संवाद

अपनी लीला से भक्तों को आनन्द देना तथा अपने व्यवहार से उन्हें शिक्षा देना भगवान के अवतार का मुख्य प्रयोजन रहता है। इसी सन्दर्भ में लक्ष्मी जी से कपिल ने कहा कि पद्मावती से विवाह कर लेना भी उनका लीला विस्तार ही माना जायेगा। वे जगत् रक्षक महाविष्णु हैं, वे अवाप्त समस्तकाम हैं, ये जहाँ कहीं भी रहें उनको किसी वस्तु की कमी नहीं होगी। ये करुणासागर हैं, इसीलिए तुमको बुलाकर ले जाने से लिए वे स्वयं यहाँ आये थे। अत: मैं तो इस परिस्थिति में यही कहना चाहूँगा कि तुम्हें यहाँ बैठकर तपस्या करना उचित नहीं है। तुम जगन्माता हो। इस तरह अपने सर्वशक्तिमान आराध्य पति को परेशानी में डालकर बच्चों की तरह आँख-मिचौनी खेलना, लीला विनोद करना तुमको शोभा नहीं देता। इसलिए अब श्रीनिवास के सामने उनके वक्ष:स्थल में तुम्हारा पहुँच जाना, उनके लिए और तुम्हारे लिए ही नहीं, अपितु पद्मावती के लिए एवं हम सभी के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। जो मुझे ज्ञात है सो तुझे बता दिया। हे लक्ष्मी! जरा स्थिर चित्त से सोचो तो, जब महाविष्णु साधारण मनुष्य की तरह तुम्हारा नाम जपते हुए तपस्या कर रहे हैं, तब तुम मन्त्रों के अधीन हो गयी हो वहाँ छिपी रह सकोगी? सभी देवगण मन्त्र के अधीन रहते हैं। अत: तुम्हें अपना मनोभाव बदल कर उस कमल से प्रकट हो जाना चाहिए और श्रीहरि के वक्ष में पहुँच जाना चाहिये। मुनियों में श्रेष्ठ कपिल के वचन सुनकर लक्ष्मी ने कहा—हे ऋषिप्रवर! आपका कहना यथार्थ है, मैं भी यह मानती हूँ कि मेरे कारण ही मेरे स्वामी को इतने कष्ट मिले हैं। मेरे जिस शरीर ने उनको कष्ट पहुँचाया उसको यहीं तपस्या हेतु सन्तप्त होने के लिए छोड़कर मैं छाया लक्ष्मी बनूँगी और श्रीनिवास के वक्ष में पहुँच जाऊँगी।

श्रीलक्ष्मी के मुँह से उपर्युक्त बातें सुनकर महर्षि कपिल ने कहा—हे माँ! तुम जगज्जननी हो। श्रीविष्णु कपट नाटक के सूत्रधार हैं तुमने अपने पतिदेव के साथ अनेक अवतार लेकर पर्याप्त यश प्राप्त किया है। आदि शेष भी तुम्हारे अवतारों की प्रशंसा करते नहीं थकते। तुम जगत् के उत्पादन, पालन और संहार में भगवान विष्णु की सहधर्मिणी बनकर रहती हो। तुम लोकमाता हो, तुम्हारे पति लोक रक्षक हैं। अपने विवेकानुसार जो मुझे बताना था हमने बता दिया। इस क्रम में कहीं भूल हुई तो क्षमा करना।

कपिल मुनि की बातें सुनकर लक्ष्मी ने कहा—हे मुनीन्द्र! आपकी बातें सर्वथा सत्य है। जब श्रीनिवास ने पद्मावती के साथ विवाह कर लिया और अब वे दोनों आनन्द के साथ समय व्यतीत कर रहे हैं तब श्रीनिवास के वक्ष में मेरे रहने में उन दोनों के एकान्त समय में बाधा पड़ सकती है। यही

सोचकर मैं करबीरपुर से यहाँ चली आयी। लक्ष्मी की उक्त बातें सुनकर महर्षि कपिल ने कहना प्रारम्भ किया—हे माँ! भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों में यह भी एक अवतार है। तुम उनसे किस अवतार में बिछुड़ी रही हो? क्या उन्होंने कृष्णावतार में सोलह हजार गोपिकाओं के साथ उन सबों की अभिलाषा के अनुसार अलग-अलग रहकर आनन्द से समय नहीं बिताया? उस समय तुम कहाँ छिपी हुयी थी? मेरे पुण्य कर्मों के फल से तुमने यहाँ आकर मेरे इस आश्रम को पवित्र किया है। मैं तो यही कहूँगा कि अब तुमको अपने नाथ से अलग रहना उचित नहीं है। हे लक्ष्मी! श्रीनिवास द्वारा प्रतिष्ठित सहस्त्रदल-कमल से तुम उत्पन्न होकर उनके वक्ष:स्थल में पहुँच जाओ और शेषाचल पर भक्तों की रक्षा करती रहो।

तप:पूत महर्षि कपिल की उक्त बातें सुनकर लक्ष्मी ने उनकी सम्मति लेकर अपना शरीर तपोनिष्ठा में लगा दिया। पुन: उसमें से दिव्य तेज के रूप में निकली और करोड़ों सूर्य प्रभा की तरह चमकती हुई उस स्वर्ण कमल की कर्णिका में जा बैठी। इस तरह दिव्य तेज से प्रकाशित होने वाली लक्ष्मी को श्रीनिवास ने देखा। लक्ष्मी ने भी श्रीनिवास को देखा और लज्जावश अपना सिर झुका लिया। श्रीनिवास ने भी यह समझकर अपना सिर झुका लिया कि कहीं यह मेरा तपस्वी रूप देखकर परिहास न करे।

●

महालक्ष्मी श्रीनिवास संयोग

कभी-कभी भगवान भी अपने प्रियजनों के समक्ष सङ्कुचित हो जाते हैं और उनका सङ्कोच भक्तों के लिए कल्याणकारक बन जाता है। केवट प्रसङ्ग में ***'प्रभुहि सकुच एही नहिं कछु दीन्हा'*** यह पङ्क्ति हम याद कर सकते हैं। प्रस्तुत प्रसङ्ग में भगवान श्रीनिवास भी लक्ष्मी जी के सामने सङ्कुचित हो रहे थे ठीक उसी समय ब्रह्मादि देवगण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर पद्मसरोवर के पास आ पहुँचे और लक्ष्मी तथा श्रीनिवास पर फूलों की वर्षा कर प्रार्थना करने लगे। श्रीनिवास की प्रार्थना करने के बाद वे लोग कमल में प्रकाशित होने वाली लक्ष्मी से इस प्रकार प्रार्थना करते हुए कहने लगे—भक्त-हितकारिणी हे लक्ष्मी! कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष पञ्चमी शुक्रवार उत्तराषाढ़ा नक्षत्र से युक्त है। यह अत्यन्त शुभ दिन माना गया है। इसलिए उस दिन तुम श्रीनिवास के वक्ष में पहुँच जाओ। यह सुनकर लक्ष्मी मौन रहीं। इसी समय ब्रह्मा ने भृगु को आँखों से ईशारा किया। भृगु ने लक्ष्मी की प्रणिपात पूर्वक प्रार्थना की—हे माता! मुझे क्षमा करो। मुझे अपना पुत्र जानकर मेरा आदर करो और कृपया मेरे पिता प्रभु श्रीनिवास के वक्ष पर पहुँच कर लोक-कल्याण करो। यह सुनकर लक्ष्मी ने भृगु को आशीर्वाद दिया और कहा—हे मुनिवर! दु:ख की बात है कि मैं तुम्हारी दृढ़ भक्ति को नहीं समझ सकी और व्यर्थ में सत्त्वगुण सम्पन्न पतिदेव पर शक किया। मेरे रजोगुण के कारण यह सब परिस्थिति आयी। मुझे अपने पति से बिछुड कर दूर देश में कुछ काल बिताना पड़ा और मेरे आराध्य पतिदेव को घोर तपस्या करनी पड़ी। काल गति किसी के लिए भी अलङ्घ्य है। यह मेरा अपराध भी नहीं है। यह सब हमसे कपट-नाटक खेलने वाले चक्रधारी की चेष्टा के सिवा और कुछ नहीं है। ऐसा कहकर लक्ष्मी श्रीनिवास के चरण-कमलों पर दृष्टि रखकर निश्चल ध्यान में लगी हुई स्वर्ण प्रतिमा की तरह खड़ी रहीं। उसने समझा कि उसे स्वयं श्रीनिवास उठाकर अपने वक्ष में रखेंगे। लक्ष्मी का यह मनोभाव समझकर ब्रह्मा श्रीनिवास की तरफ देखते हुए सङ्कोच में पड़े रहे। तदनन्तर

प्रभु श्रीनिवास ने ब्रह्मा और शङ्कर की ओर देखकर कहा—अब सङ्कोच किसलिये है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपलोगों की सम्मति के बिना लक्ष्मी मेरे वक्ष में प्रविष्ट होना नहीं चाहती। श्रीनिवास की बातें सुनकर शीघ्र ही ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवगण लक्ष्मी से अन्तिम प्रार्थना करते हुये कहने लगे—हे माँ! तुम इस शुभ समय में परमात्मा के वक्षःस्थल में प्रवेश करो और यथा पूर्व वहीं रह जाओ।

ब्रह्मा सहित देवताओं की प्रार्थना सुनकर लक्ष्मी ने विशिष्ट आभरणों से अपने को अलङ्कृत किया। ललाट पर तिलक तथा आँखों में अञ्जन लगाया। जब चारों ओर सुगन्धमय वातावरण बन गया तब महालक्ष्मी सुवर्णकमल से निकलकर धीरे-धीरे चलती हुई प्रभु श्रीनिवास के पास जा पहुँची। विश्वनायक श्रीनिवास के वक्षःस्थल पर चन्दन, कस्तुरी आदि सुगन्धित द्रव्यों को लक्ष्मी ने लगाया। पश्चात् गले में पुष्पमाला डालकर खड़ी रही। स्पन्दन युक्त दिव्य वातावरण में भगवान श्रीनिवास ने कृपाप्रदर्शित करते हुये अपने दोनों हाथों से लक्ष्मीजी को उठाकर अपने वक्षःस्थल पर स्थापित कर लिया।

उस समय रम्भा, उर्वशी आदि अप्सराएँ आकाश में आनन्द से नाच उठीं। गन्धर्वों ने मनोहर गीत गाये। देवगण फूल वर्षाये। ब्रह्मा ने देवताओं के साथ उस पद्मसरोवर में स्नान किया जिसमें से वरलक्ष्मी प्रकट हुयीं। देवों ने पद्मसरोवर की प्रशंसा करते हुए कहा कि जो लोग कार्त्तिक मास शुक्ल पक्ष पञ्चमी को इस पुण्य सरोवर में स्नान करेंगे उनको महालक्ष्मी धन-धान्य, वस्तु-वाहन आदि से पूर्णकर अन्त में मोक्ष प्राप्ति में सहायता प्रदान करेंगी। पश्चात् सभी देवगण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर भगवान श्रीनिवास के साथ शेषाचल के लिए प्रस्थान कर गये।

शेषाचल पर पद्मावती को जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि मेरे आराध्य श्रीनिवास लक्ष्मी के साथ यहाँ पधार रहे हैं, तब वह मङ्गलस्नान कर सर्वविध आभूषणों से अलङ्कृत हो आनन्द से उनका स्वागत करने के लिए आगे आयीं और उसने उनकी आरती उतारकर चरणस्पर्श किया। लक्ष्मी सहित श्रीनिवास ने पद्मावती का मङ्गलाशासन किया। इसके पश्चात् वे सब वकुलमालिका को साथ लेकर आनन्दनिलय में प्रविष्ट हुये। प्रभु श्रीनिवास ने सङ्कल्प मात्र से सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों को तैयार कर ब्रह्मा आदि सभी देवताओं को भोजन कराया। भोजनोपरान्त वस्त्राभरण एवं चन्दन ताम्बूल आदि देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। सभी देवगण प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने निवास स्थलों के लिए प्रस्थान कर गये। आनन्दनिलय में भगवान श्रीनिवास, लक्ष्मी तथा पद्मावती के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

●

जाबालि तीर्थ की महिमा

यह तीर्थ वेङ्कटाचल पर भगवान श्रीनिवास के मन्दिर से करीब दो मील की दूरी पर पश्चिमोत्तर दिशा में है। पूर्व काल में यहाँ ऋषि-पुङ्गव जाबालि अपना आश्रम बनाकर गई वर्षों तक तपस्या करते रहे। इसलिए इसका नाम जाबालि तीर्थ पड़ा। यहाँ हनुमानजी का मन्दिर है।

पूर्व काल में दुराचार नामक एक ब्राह्मण इस तीर्थ के पवित्र जल में स्नान करके पापविमुक्त हो गया। एक समय वह विप्र पिशाच से पकड़ा गया और वेङ्कटाचल पर आकर इस जाबालि तीर्थ के जल में स्नान करने के बाद वह पिशाच के चङ्गुल से मुक्त हो गया। ●

भक्त से भगवान हार गये

(हाथीराम बाबा की गाथा)

शेषाद्रि पर आकर भगवान श्रीवेङ्कटेश ने कई लीलाएँ की हैं। उन्हीं मधुर लीलाओं में से प्रभु की यह एक लीला स्मरणीय है।

उत्तर भारत का बाबाजी नामक एक परम भक्त वेङ्कटाद्रि स्थित पवित्र पुष्करिणी में स्नान कर श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का दर्शन तथा आश्रम जाकर उनकी पूजा करता। पूजन के बाद भगवान श्रीनिवास को ही माध्यम बनाकर चौपड़ खेलता। लोग उन्हें बहुत कुछ कहते; परन्तु वह निराला ही भक्त था, जो चौपड़ से भगवान को प्रसन्न करता था। अचानक एक दिन विचित्र घटना घटी। आश्रम के बाहर सुगन्धित हवा वह रही थी। वह प्रदेश भी तेजोमय कान्ति से विराजित था। बाबाजी अचानक इस परिणाम को देखकर चकित हुए। उन्हें उस कान्ति में एक दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार हुआ। बाबाजी उस मूर्ति को देखकर तन्मय हो गये और हे गोविन्द! नारायण! हरे वेङ्कटेश! हरे श्रीनिवास! कहकर चरणों पर गिर पड़े। श्रीनिवास ने अपने चरणों पर गिरे बाबाजी को उठाया और कहा—बाबाजी आइये हम दोनों पासा खेलें। श्रीनिवास की यह बात सुनकर महात्मा बड़े खुश हुए और वेङ्कटेश जी को आश्रम के अन्दर ले गये। उसने श्रीनिवास को मृगचर्मासीन कर उनका दिव्य मङ्गल विग्रह देखते-देखते तल्लीन होकर अपने आपको खो दिया। प्रभु श्रीनिवास ने इसे जानकर उनसे पूछा—बाबाजी क्या पासा नहीं खेलोगे? श्रीनिवास की बात सुनकर बाबाजी होश में आए और प्रभु के साथ चौपड़ खेलने लगे। भक्त के साथ भक्तवत्सल भगवान को पासा खेलने में बड़ा आनन्द आया। पहले से जो होता आया है वही हुआ। भगवान भक्त से हार गये। प्रभु श्रीनिवास ने कहा—'भक्त तुम जीत गये हो'। जो चाहो माँग लो। वरदान देने को तैयार हूँ। बाबा ने श्रीनिवास की बात सुनकर प्रार्थना की हे जगदीश्वर, परमधाम, वेङ्कटेश्वर! मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं केवल आपका विश्वरूप देखना चाहता हूँ। महात्मा की प्रार्थना पर श्रीनिवासजी ने अपना विश्व रूप उन्हें दिखाया। बाबा ने उनकी स्मृति की। इनके बाद श्रीनिवास आँखों से ओझल हो गये। अब वे वेङ्कटेश्वर प्रतिदिन बाबाजी के यहाँ आकर पासा खेलने लगे। इस प्रकार कई दिन व्यतीत होने पर एक दिन प्रभु ने बाबा से पासा खेलते-खेलते कहा—बाबा तुम्हें कोई बाहर बुला रहा है, जाकर देखो। बाबाजी ने बाहर आकर देखा पर कहीं किसी का कुछ पता न चला। जब बाबा ने पुनः कुटी में प्रवेश किया तो देखा श्रीनिवास नहीं हैं और उनका कण्ठहार पड़ा है। महात्मा ने समझा गलती से हार छूट गया है। अतः सबेरे सौपने की कामना से रात्रि भर जागते रहे। प्रातः हार सौपने के लिए मन्दिर की ओर दौड़े।

उधर मन्दिर में श्रीनिवास के गले से कण्ठहार गायब हुआ देखकर पुजारी ने अधिकारियों को सूचित कर दिया। लोग हार खोज ही रहे थे कि बाबाजी हार लिए वहाँ पहुँच गए। पुजारी ने इनके पास हार देखकर चोर समझकर इन्हें मारा पीटा। एक अधिकारी उन्हें रोककर बाबा से पूछा—महात्मा होकर आपने चोरी क्यों की? बाबा ने अपने को निर्दोष बताते हुए उन सारी बातों को बता दी, जो श्रीनिवास के साथ प्रतिदिन हुआ करती थी। अर्चक एवम् अधिकारियों को विश्वास न हुआ। उन्होंने कहा—'कहाँ भगवान और कहाँ वैरागी'। बाबाजी को चोरी के अभियोग में तत्कालीन महाराज कृष्णदेव

राय के पास ले जाया गया। महाराज ने सोचा— सच्चाई जाने बिना किसी भक्त को दण्ड नहीं देना चाहिए। अत: बाबा की परीक्षा लेने के लिए उनसे कहा कि यदि परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे तो हम तुम्हें छोड़ देंगे। महाराज ने बाबा को पाताल गृह में ले जाकर उसमें ईख भरवा दिया और इनसे कहा कि यदि तुम सच्चे भक्त हो तो सुबह होने के पूर्व इस सब ईख को खा जाना। बाबा जी को बन्द कर बाहर से ताला लगाकर सिपाहियों को पहरा पर नियुक्त कर दिया गया। बाबा ने यह सब देखकर मन में बालाजी से प्रार्थना की और वे वहीं सो गये। भक्त परायण श्रीवेङ्कटेश्वर ने बाबा की रक्षा करने हेतु हाथी रूप में आकर प्रात: होने से पहले ही सारी ईखों को खा लिया। ऐसा क्यों न होता? भक्तों के लिए ही तो भगवान ने मीन, शूकर, नरहरि आदि रूप ग्रहण किया था।

आज हाथी बनना कोई आश्चर्यजनक बात न हुई। अस्तु! सुबह होते ही हाथी गम्भीर स्वर में गरज कर अपनी सूढ़ से बाबाजी को उठाया और आशीर्वाद दिया। हाथी का गर्जन सुनकर सिपाही आश्चर्य से अपने अधिकारियों को बताने के लिए दोड़े। तब तक हाथी रूपधारी श्रीभागवान पाताल गृह के दरवाजे को अपने सिर से धक्का देकर उसे गिराकर दौड़ निकले। राजा के अधिकारी गण आश्चर्य से यह सब देखने लगे। हाथी वहाँ से दौड़ते-दौड़ते गायब हो गया। बालाजी ने भक्त की रक्षा हेतु हाथी के रूप में सारी ईखों को खा लिया। इसके बाद बाबाजी परम भक्त हैं ऐसा सब उनकी सराहना तथा प्रशंसा करने लगे। बाबा को चोर कह मारने तथा अपमानित करने वाले लोग उनके चरणों पर गिर कर क्षमा माँगने लगे। जिस ओर हाथी गया था उस ओर देखकर बाबा ने कहा—हे श्रीनिवास आपने मेरी रक्षा हाथी बनकर की। तदनन्तर हाथी राम-हाथी राम कहते हुए वे मन्दिर की ओर दोड़ने लगे। राजा को जब यह जानकारी मिली तो उन्होंने हाथी राम बाबा की प्रार्थना कर निवेदन किया कि हे स्वामि! आप इस मन्दिर के पुजारी बनकर रहिए। राजा की बात मानकर बाबा ने बड़ी श्रद्धा से कुछ दिन प्रभु की सेवा की तथा पूजा, पाठ, उत्सव आदि अत्यन्त वैभव से निभाया और अन्त में बालाजी में ही लीन हो गये। इसी तरह कलिनायक भगवान वेङ्कटेश की विविध लीलाएँ हुई हैं, जिसे आज गा, सुनकर मानव अपना उद्धार कर रहा है। वर्तमान में जैसा वैभव ऐश्वर्य इस महाप्रभु का फैला है वैसा न केवल भारत अपितु विश्व में भी देखने को नहीं मिलता। ***'कलौ वेङ्कटनायक:'*** यह उक्ति सर्वतो भावेन चरितार्थ हो रही है।

●

दुर्लभ को सुलभ बनायें

पुराणों में ऐसा कहा गया है कि स्वामिपुष्करिणी में स्नान करना, श्रीवराहस्वामी के दर्शन करना और कटाहतीर्थ का जल पीना, ये तीनों दुर्लभ हैं। ये तीनों सभी बड़े पापों को दूर करने वाले हैं। इनकी महिमा वर्णनातीत है। पूर्वकाल में अरुन्धती ने अपने पतिदेव की आज्ञा पाकर फाल्गुनी तीर्थ में कठोर तपस्या की और वहाँ लक्ष्मी सहित भगवान का साक्षात्कार पा सकी।

●

आकाशगङ्गा

आकाशगङ्गा नामक यह तीर्थ वेङ्कटाचल पर श्रीबालाजी के मन्दिर से दो मील दूरी पर उत्तर दिशा में है। पूर्व काल में रामानुज नामक एक विष्णुभुक्त ब्राह्मण इस तीर्थ के पास तपस्या करने लगे। कुछ काल के पश्चात् इनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवान श्रीनिवास ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। प्रभु के दर्शन से आनन्दविभोर हो भक्त रामानुज ने उनकी स्तुति की तथा चरण-कमलों में अटल भक्ति प्रदान करने हेतु वर माँगा। भगवान श्रीनिवास ने वर प्रदान कर तीर्थ की महिमा बताते हुए कहा कि जो व्यक्ति चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा को इसमें स्नान करेगा वह मेरे दिव्यलोक का अधिकारी बनेगा।

इसके अतिरिक्त यह भी कथा है कि केशवभट्ट नामक एक व्यक्ति जिसका मुख अपने पिता के श्राद्ध में अयोग्य ब्राह्मण को भोजन कराने के कारण गदहे के समान हो गया था, उसने इस तीर्थ में स्नान किया और उसका मुख तीर्थ जल के प्रभाव से पूर्ववत् हो गया। महर्षि अगस्त्य ने इस तीर्थ में उसे स्नान करने का निर्देश दिया था।

●

चक्र-तीर्थ की महिमा

यह पवित्र तीर्थ वेङ्कटाचल पर बालाजी के मन्दिर से तीन चौथाई मील की दूरी पर पश्चिमोत्तर दिशा में है। इस तीर्थ के जल में स्नान करने से सभी पापों का नाश हो जाता है।

प्राचीन काल में पद्मनाभ नामक एक भक्त वेङ्कटाचल पर ही कुटिया बनाकर रहते हुए तपस्या करते थे। वे कुछ दिन कन्दमूल फल खाकर रहे। कुछ दिन केवल पत्ते खाकर जीवित रहे और कुछ दिन केवल जल ग्रहण करते रहे। कुछ समय पश्चात् केवल साँस लेते हुए बड़ी निश्चल भक्ति के साथ तपस्या की। उनकी प्रगाढ़ भक्ति से प्रभावित होकर भगवान ने उन्हे दर्शन दिया। उस भक्त ने अनेक प्रकार से भगवान की स्तुति की। भगवान ने उसे अपनी इच्छा बताने के लिए कहा; परन्तु उसने कहा—हे परमात्मन्! मेरी कोई अपनी इच्छा नहीं है। बस, मुझे यही वर दीजिए कि मैं और कुछ दिनों तक तपस्या करते रह सकूँ। 'स्वामी ने उनकी इच्छा स्वीकार कर ली।

एक दिन पद्मनाभ तपस्या में लीन थे कि एक राक्षस उन्हें खाने के लिए दौड़ा। मुनि पद्मनाभ ने भयभीत होकर थर-थर काँपते हुए अपनी रक्षा के लिए चक्रधारी भगवान से प्रार्थना की। भक्तवत्सल श्रीनिवास ने उस राक्षस के संहार हेतु अपना सुदर्शन चक्र भेज दिया। चक्र ने राक्षस का सिर धड़ से अलग कर भक्त की रक्षा की। पश्चात् उस राक्षस की जगह एक गन्धर्व खड़ा दिखाई पड़ा। कुछ वर्ष पूर्व एक ऋषि के शाप से उसे राक्षस का स्वरूप प्राप्त हुआ था। इस समय वह शाप से मुक्त होकर चक्र एवं मुनि को प्रणाम करके अपने लोक के लिए प्रस्थान कर गया। उसी दिन से इस तीर्थ का नाम चक्र तीर्थ पड़ गया। जो लोग यहाँ भक्ति पूर्वक स्नान करते हैं वे क्रूर ग्रह, जन्य, दोष एवं पापादि से मुक्त हो भगवत्कृपा भाजन बनते हैं।

●

श्रीबालाजी मन्दिर तिरुमलै : एक परिचय

दाक्षिणात्य मन्दिरों में मूल अचल विग्रह एवं उत्सव-सचल विग्रह सर्वत्र प्रतिष्ठित है। सचल विग्रह की पूजा, भोगराग होता है। उत्सव के समय यही बाहर लाया जाता और शोभायात्रा निकाली जाती है। तिरुमला के आनन्द निलय में मूल विग्रह के साथ सचल विग्रह श्रीवेङ्कटेश जी के चार हैं। श्रीवेङ्कटेश जी के दर्शनोपरान्त इन छोटे चार उत्सव विग्रह पर दृष्टि जाती है। जिसमें प्रधान सचल विग्रह है—भोग श्रीनिवास (मनवाल पेरुमाल) जो कि मूल विग्रह के पास ही अवस्थित है। यह विग्रह रौप्य (चाँदी) निर्मित है और श्रीवेङ्कटेश जी के सदृश आकृति वाला है। मूल विग्रह को प्राप्त भोग इसी सचल श्रीनिवास के पास ही निवेदन किया जाता है। प्रतिदिन प्रात: इसी विग्रह का अभिषेक और रात्रि के समय इसी श्रीविग्रह को शयन मण्डप में शय्या पर शयन कराया जाता है। पौष मास को छोड़कर अन्य समय में शयन के पूर्व नृत्य वाद्य यन्त्र के साथ ताल्लपाक वंशीय कवियों का भजन सङ्गीत भगवत् सन्निधि में किया जाता है।

दूसरा सचल विग्रह ***'मलै कुनिय निनरन् पेरुमाल'*** अर्थात् विनत पहाड़ पर दण्डायमान भगवान सङ्केप में इन्हें मलैयप्पन स्वामी के नाम से बोला जाता है। उत्सव शोभायात्रा में इन्हीं श्रीविग्रह को मन्दिर के बाहर लाया जाता है। प्राय: तीन फुट ऊँचा यह श्रीविग्रह अनुरूप श्रीदेवी और भूदेवी विशिष्ट है।

तीसरा सचल विग्रह उग्र श्रीनिवास जिसे ***'वेङ्कट-त्रुरैवर पेरुमाल'*** कहते हैं यह श्रीवेङ्कटेशजी का उग्र या संहार रूप का प्रतीक है। डेढ़ फुट ऊँचा और श्रीदेवी-भूदेवी विशिष्ट है। लोगों का कहना है कि ***'मलैयप्पन'*** श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा के पूर्व श्रीवेङ्कटेश जी का उत्सव विग्रह यही था। कार्तिक द्वादशी के दिन सूर्योदय से पूर्व इसी विग्रह की शोभा यात्रा से नगर भ्रमण किया जाता है। इस विग्रह पर सूर्य रश्मियाँ पड़ने से पृथ्वी पर अनर्थ हो जायेगा, यह वहाँ के भक्तों का कहना है।

श्रीवेङ्कटेशजी का चतुर्थ श्रीविग्रह ***'दरबार श्रीनिवास'*** कोलुबु श्रीनिवास है। यह मन्दिर की सभामूर्ति और प्रशासक श्रीविग्रह है। यहाँ प्रतिदिन श्रीवेङ्कटेशजी की तोमाल सेवा होने पर तिरुमामनि मण्डप में एक सभा होती है, उसमें विग्रह की रौप्यनिर्मित सिंहासन पर विराजमान कराके सोने की छतरी पकड़वाकर उनके सामने उस दिन का पञ्चाग-तथ्य का वर्णन करने के बाद आरती होती है। पाठ होता है।

गर्भगृह में सचल श्रीविग्रह श्रीकृष्ण-रुक्मिणी श्रीसीता देवी, लक्ष्मण, सुग्रीव सहित श्रीरामचन्द्र का, श्रीसुदर्शन चक्रराज का तथा श्रीकृष्ण की नृत्य परायण (बालक) मूर्ति है जिसके दाहिने हाथ में नवनीत का पात्र तथा वाम हस्त नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित है। इस मूर्ति के अस्तित्व का ११०० खृष्टाब्द के शिलालेख में संवाद मिलता है। पौष मास में जब तिरुप्पावैव्रत अनुष्ठित होता है, तब भोग श्रीनिवास के पार्श्व में यह विग्रह भी एकान्त सेवा ग्रहण करता है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्रीरामचन्द्र ने लिखा है कि इस श्रीविग्रह को श्रीरामानुज स्वामीजी ने यहाँ प्रतिष्ठित किया था। वर्तमान में ये विग्रह परिक्रमा प्रकोष्ठ में पूजित हैं।

कृतमाला नदी के तट पर तपस्यारत विश्वम्भर नामक एक योगी ने इस मूर्ति को एक पुष्करिणी में से उद्धार करके अपने ग्राम में प्रतिष्ठित किया। यथाविधि पूजा की। कालक्रम से उस अञ्चल में युद्ध विग्रह जनित अशान्ति होने से उनके निर्देश से

कई वैष्णवों ने इस विग्रह को लाकर तिरुपति में श्रीशैलपूर्ण स्वामी के पास रख दिखा। उस समय श्रीशैलपूर्ण स्वामी विभीषण कर्तृक (श्रीरामचन्द्र के पास शरणागति) आश्रय भिक्षा के वृत्तान्त का कालक्षेप कर रहे थे। उस विश्लेषण में श्रीरामचन्द्र का श्रीविग्रह आकर उपस्थित हुआ, अत एव श्रीवैष्णव के प्रत्याख्यान न करके श्रीरामानुज स्वामी और श्रीशैलपूर्ण स्वामी सपरिवार इस विग्रह को श्रीवेङ्कटेश जी के मन्दिर में ले आये और वहाँ पर इस विग्रह की सेवा पूजा अर्चना की नियमित व्यवस्था की।

श्रीवेङ्कटेश भगवान की दैनिक सेवा अन्य श्रीवैष्णव मन्दिरों की तरह ही है। प्रात: सुप्रभात जागरण गीत। शयन मण्डप में शयन मुद्रा में श्रीनिवास मूर्ति का उत्थापन करके अर्चक उन्हें गर्भगृह में ले जाकर मूल विग्रह के पास स्थापन करते हैं। उनकी आरती करके चीनी मिश्रित दुग्ध एवं मक्खन का भोग निवेदन किया जाता है। इस समय भक्तजनों को भगवद् दर्शन कराके उन्हें प्रात: प्रसाद वितरण किया जाता है। इसे सुप्रभात दर्शन कहा जाता है। इसके बाद विश्वरूप दर्शन, भक्त यात्री मन्दिर के भीतर प्रवेश करके श्रीवेङ्कटेश जी के दर्शन कर सकते हैं। इसके बाद तोमाल सेवा– इसके लिए अलग से टिकट खरीदना पड़ता है। तोमालू या तोमाल का अर्थ है–पुष्पमाल्यार्पण। विश्वरूप दर्शन के बाद श्रीविगह के अङ्ग में पूर्वदिन की समस्त पुष्पमालायें हटाकर भोग श्रीनिवास मूर्ति का अभिषेक कराने बाद कूल विग्रह और उत्सव विग्रह को नवीन पुष्पमालायें धारण करायी जाती हैं। यही तोमाल सेवा है।

इसके बाद कोलूबु श्रीनिवास को तिरुमामनि मण्डप में लाकर सिंहासन पर बैठाकर पाठ करने के बाद पूर्वदिन में श्रीमन्दिर में कुल कितनी आय हुई है सुनाया जाता है। इसके बाद श्रीवेङ्कटेश सन्निधि में सहस्रनाम से अर्चना होती है। शयन मण्डप को परिशुद्ध करके वहाँ सिद्ध किया हुआ नैवेद्य लाकर रखा जाता है और घण्टाध्वनि के बीच उसे भगवान को निवेदित किया जाता है। केवल अर्चक गण ही वहाँ उस समय रह सकते हैं। इस समय पार्श्वमण्डप में श्रीवैष्णव गण आलवार लोगों को नालगिर दिव्य प्रबन्ध का पाठ सुनाते हैं। इसके बाद ३-४ घण्टों तक भक्तगण बिना शुल्क के भगवान का दर्शन कर सकते हैं, इसे सर्वदर्शन कहा जाता है। इसके उपरान्त दो से तीन बजे के बीच में मध्याह्न पूजा अष्टोत्तशत नाम अर्चना के बाद भगवान को मध्याह्न भोग निवेदन किया जाता है। इसके बाद कुछ क्षण दर्शन बन्द रखने के बाद पुन: ३-४ घण्टों तक सर्व दर्शन होता है। रात्रि काल में भी नैश पूजा–नैश्य भोग के बाद भगवान की एकान्त सेवा होती है। इस सेवा में दर्शक गण टिकट खरीदकर दर्शन कर सकते हैं।

शयन मण्डप में एक झूला के ऊपर सुन्दर शय्या प्रस्तुत करके भोग श्रीनिवास मूर्ति को लाकर दुग्ध, फल, मिष्टद्रव्य निवेदन कराया जाता है। इस समय नाना वाद्य यन्त्र के साथ ताल्लपाक वंशीय कवियों के द्वारा कीर्तन गायन किया जाता है। यहाँ सुगन्धित भोग श्रीनिवास के हृदय में और मूल विग्रह में अवस्थित लक्ष्मीजी को लपेटा जाता है। एकान्त सेवा के बाद। इसके अलावा साप्ताहिक कुछ विशेष कृत्य हैं जैसे प्रति शुक्रवार को मूल विग्रह में पुलंगी सेवा या विशेष पुष्प सज्जा और पूजा प्रति शुक्रवार को मूल विग्रह का अभिषेक बीच-बीच में भक्तों द्वारा सहस्रघटाभिषेक करवाया जाता है।

दैनिक उत्सवों के अलावा बीच-बीच में श्री वेङ्कटेशजी के नाना प्रकार के उत्सव-यात्रा लगे ही रहते हैं। जैसे ब्रह्मोत्सव, तिरु अध्ययनोत्सव, वसन्तोत्सव, पवित्रोत्सव, झूलनोत्सव, नौका-विहार उत्सव और इन सब उत्सवों में श्रीब्रह्मोत्सव प्रधान है। वर्ष में चार श्रीब्रह्मोत्सव होते हैं—आश्विन मास में श्रवण नक्षत्र में, चैत्र मास में रथ सप्तमी में, कार्तिक मास में कैशिक द्वादशी में और अगहन

एकादशी से प्रारम्भ होकर ग्यारह दिन तक यह उत्सव चलता है। वाराहपुराण के अनुसार ब्रह्माजी के द्वारा श्रीवेङ्कटेशजी की अर्चना-उत्सव जिस प्रकार से हुआ था, उसके अनुकरण में इस उत्सव की सृष्टि हुई है। यहाँ का यह प्राचीनतम उत्सव है। प्रथम दिन ध्वजारोहण द्वितीय दिन से नानारूप विशेष पूजा और क्रिया काण्ड के बाद प्रात: सायं अत्यन्त समारोह के साथ उत्सव मूर्ति की शोभा-यात्रा सहकारिता के साथ नगर परिक्रमा करायी जाती है। इस उत्सव में शेष, हँस, सिंह, गरुड़, हाथी, घोड़ा, रथ, गजदन्त, सूर्यप्रभा, चन्द्रप्रभा, विमान, पालकी आदि वाहनों में भगवान को विराजमानकर, विविध अलङ्कारों से सजाया जाता है। सहस्त्रों भक्त इस उत्सव के दर्शन हेतु इस समय तिरुमला आते हैं। सुदर्शन चक्रराज को अन्तिम दिन स्नान कराया जाता है। इस प्रकार यह उत्सव समाप्त होता है।

अतिथि बने शेषशायी हरि

भगवान श्रीमन्नारायण कभी राम कभी कृष्ण किसीसमय वेङ्कटेश बनकर लीला करते हुये जगत्कल्याण करते हैं। आनन्दानुभव करने के लिए कभी वे भूखे अतिथि बनकर भक्त के घर पधार जाते हैं और भोजन से तृप्त हो अर्चाविग्रह धारण कर भक्तों का उद्धार करते रहते हैं। भगवान की ऐसी ही लीलाओं में से एक लीला की चर्चा यहाँ की जा रही है।

पूर्वकाल में शालिहोत्र नामक ब्राह्मण ने एक वर्ष उपवास करके तपस्या की। पारण के दिन वे कुछ शालि-कणों को चुनकर नैवेद्य बनाकर भगवान को भोग लगाकर जब प्रसाद ग्रहण करने को उद्यत हुए, तब स्वयं श्रीहरि ब्राह्मणवेश में उनके यहाँ अतिथि होकर पधारे। शालिहोत्र ने पूरा अन्न अतिथि को अर्पित कर दिया। भोजन से तृप्तहोकर विश्राम के लिए, अतिथि ने पूछा— ***'किं गृहम्'*** शालिहोत्र ने अपनी कुटिया की ओर सङ्केत कर दिया। अतिथि कुटिया में चले गये; लेकिन जब शालिहोत्र कुटिया में गये, तब उन्हें साक्षात् शेषशायी श्रीहरि के दर्शन हुए। वरदान माँगने को कहने, पर शालि-होत्र ने प्रभु से वहीं उसी रूप में नित्य स्थित रहने का वरदान माँगा। तदनुसार उसी रूप में श्रीविग्रह रूप से प्रभु अब भी स्थित हैं।

वीक्षारण्य नरेश धर्मसेन के यहाँ साक्षात् लक्ष्मीजी ने उनकी कन्या के रूप में अवतार धारण किया। महाराज ने पुत्री का नाम वसुमती रखा था। वसुमती के विवाह योग्य होने पर भगवान वीरराघव राजकुमार के वेश में राजा धर्मसेन के यहाँ पधारे। राजकुमार के प्रस्ताव करने पर नरेश ने उनसे अपनी कन्या का विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् जब वर-वधू भगवान वीरराघव के मन्दिर में दर्शनार्थ लाये गये, तब दोनों अपने श्रीविग्रहों में लीन हो गये। पौषमास के भाद्रपद नक्षत्र में तिरुकल्याणोत्सव इस विवाह के मङ्गल-स्मरण में ही होता है। भगवान इस समय मक्षिकावन पधारते हैं, जहाँ महाराज धर्मसेन की राजधानी धर्मसेनपुर नगरी थी।

भगवान का यह लीला स्थल वर्तमान में मद्रास अरकोणम् लाईन पर मद्रास से २६ मील दूर त्रिवेल्लोर स्टेशन है। यहाँ विशाल मन्दिर बना हुआ है। भगवान वीरराघव के नाम से यहाँ प्रसिद्ध हैं। शेषशायी प्रभु की मूर्ति का श्रीमुख पूर्व की ओर, मस्तक दक्षिण तथा चरण उत्तर की ओर है। भगवान का दाहिना हाथ महर्षि शालिहोत्र के मस्तक पर स्थित है। मन्दिर में ही श्रीलक्ष्मीजी का विग्रह है, जिन्हें कनकवल्ली या वसुमती कहते हैं। पुण्यावर्त क्षेत्र के नाम से भी इस क्षेत्र की प्रसिद्धि है।

वराह विग्रह की दिव्यता

वसु नामक एक निषाद भगवान श्रीनिवास का परम भक्त था। एक दिन निषादराज वसु राजा तोण्डमान के द्वार पर आया। द्वारपालों से उसके आगमन की सूचना पाकर महाराज ने उसे दरबार में बुलाया और मन्त्रियों के साथ पुत्र और परिवार सहित उसका स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उन्होंने वसु से पूछा—निषादराज! किस कार्य से तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है?

वसु निषाद ने कहा—राजन्! मैंने वन में एक बड़े ही आश्चर्य की बात देखी है उसे सुनिये—रात में कोई श्वेत रंग का वराह आकर मेरा साँवा चरने लगा। तब मैंने हाथ में धनुष लेकर उसका पीछा किया। खदेड़ने पर वह वायु के समान वेग से भागा और मेरे देखते-देखते स्वामिपुष्करिणी के तट पर वल्मीक में घुस गया। तब मैंने क्रोधवश उस वल्मीक को खोदना आरम्भ किया; इतने में ही मैं मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय मेरा यह पुत्र भी आ गया और मुझे पृथ्वी पर मूर्छित होकर पड़ा देख पवित्र होकर देवाधिदेव भगवान मधुसूदन की स्तुति करने लगा तब भगवान वराह का मुझमें आवेश हुआ, उन्होंने मेरे पुत्र से कहा—निषादराज! तुम शीघ्र राजा के पास जाकर मेरा सारा वृत्तान्त उनसे कहो। राजा काली गौ के दूध से अभिषेक करते हुए इस वल्मीक को धो डालें, तब इसके भीतर एक परम सुन्दर शिला दिखायी देगी। उसे लेकर किसी कारीगर से मेरी मूर्ति बनवावें, जिसमें मैं भूमिदेवी को अपने वायें अङ्क में लेकर खड़ा रहूँ और मेरा मुख सूकर के समान हो। मूर्ति तैयार हो जाने पर बड़े-बड़े मुनीश्वरों और वैखानस महात्माओं द्वारा उसकी स्थापना कराकर स्वयं तोंडमान भी उसकी पूजा करें। यों कहर भगवान वराह ने मुझे छोड़ दिया, तब मैं स्वस्थ हो गया। देवाधिदेव भगवान वराह आपसे क्या कराना चाहते हैं, यह बतलाने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ।

राजा तोंडमान भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। तदनन्तर पुष्कर आदि मन्त्रियों के साथ कार्य का निश्चय करके वेङ्कटाचल जाने का विचार किया और सब ग्वालों को बुलाकर कहा—गोपगण! जितनी भी मेरी काली और कपिला गौएँ हैं, उन सबको बछड़ों सहित वेङ्कटाचल के समीप लाओ। गोपों को ऐसी आज्ञा देकर राजा ने मन्त्रियों को सूचित किया—कल ही यात्रा करनी है। इसके बाद सब प्रजा को विदा करके जितेन्द्रिय राजा ने अन्त:पुर में प्रवेश किया और अपनी पत्नियों से वराहजी की वह कथा सुनाकर वे रात में वहीं सोये।

●

श्रीबालाजी मेरी भी रक्षा करो

हे श्रीवेङ्कटेश्वर! आपने सभा में द्रौपदी के मान को बचाया। प्रह्लाद की बातों को सुन लिया। शरण में आए विभीष्ण की रक्षा की। रावण-कुम्भकर्णादि का वध कर, (विभीष्ण से) लङ्का पर राज्य कराया। बलि को पाताल भेज दिया। ध्रुव को ध्रुव रूप से राज्याधिकार प्रदान कर अनुग्रह किया। जो जानकर तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उन्हें अपना पद देकर रक्षा करते हो, हे श्रीबालाजी! मेरी भी तुम रक्षा करो।

हे प्रभो! मुझे अनुगृहीत करो

हे शेषाचलपति! मेरे (तुम्हारे) दास बन जाने से तुम्हें कौन-सा गौरव मिला? मेरी स्तुतियों से तुम्हारा क्या लाभ हुआ? और मेरे जैसे व्यक्ति के प्रणाम करने से तुम्हें क्या लाभ मिलेगा? तुम्हारे प्रति मेरे किए गए उपवास-तप से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम दयानिधि हो। अपनी सेवा करने वालों के लिए तुम कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि बनकर वर देते हो हे श्रीवेङ्कटेश्वर! मुझे भी अभीष्ट वर प्रदान कर अनुगृहीत करो।

●

शेषाद्रिनाथ का वैभव गान

(हैं प्रणतपाल कृपालु हरि)

जगत् कल्याण हेतु भगवान श्रीमन्नारायण सदा सर्वत्र व्याप्त होकर प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप से सचेष्ट रहते हैं। वे ही पर, व्यूह, वैभव, अर्चा और अन्तर्यामी रूपों में रहकर भक्तों का कल्याण करते रहते हैं। शास्त्रों में भक्त कार्यों के सम्पादन हेतु विभिन्न नामों द्वारा उनकी आराधना की चर्चा पायी जाती है। इसी क्रम में यह भी उक्ति है— ***'कलौ वेङ्कटनायकः'*** अर्थात् कलि-युग में श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान ही सबों के लिये मनो-नुकूल सर्वविध आराधना के अनुकूल फल देते हैं। एतदर्थ ही वे इस रूप में अवतरित हैं।

अनन्त श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज जब भी वेङ्कटाद्रि पधारते थे तो प्रभु के दिव्य मङ्गल विग्रह रूप, गुण, वैभव का निरीक्षण कर भक्तों के आनन्द हेतु उसे पद्यात्मक रूप प्रदान कर सबों के लिए अनुभवगम्य बना देते थे। परम श्रद्धेय श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा रचित उन्हीं पद्यों की शृङ्खला में एक पद्य—'श्रीनिवास प्रताप दिनकर भ्राजता सब लोक में' यह भी है। यह पद्य हरिगीतिका छन्द में निर्मित है। इस लयात्मक पद्य में कुछ स्थलों पर ऐसी पङ्क्तियाँ आयी हैं जिसका अर्थ गुम्फित है।

वैदिक-वाणी के पाठकों ने इसकी व्याख्या हेतु मुझसे कई बार चर्चा की। पाठकों की माँग को ध्यान में रखते हुए पद्य में साङ्केतिक अर्थ के स्पष्टी-करण हेतु सम्प्रति व्याख्या की जा रही है जिससे सबों को परिज्ञात हो सके।

श्रीनिवास प्रताप दिनकर भ्राजता सब लोक में।
सो दिन जन के तारने प्रभु, आवसे भूलोक में।।

प्रभु वेङ्कटेश को श्रीनिवास संज्ञा से भी कहा गया है—उनका प्रभाव स्वरूप सूर्य प्रकाश अनन्त ब्रह्माण्ड में छाया हुआ है। दीनजनों के उद्धार हेतु वे श्रीवैकुण्ठ छोड़कर भूलोक में पधारे हैं।

वह कृपा चितवन नाथके जन को सनाथ बनावता।
वारीश करुण उमड़ उमड़ अघ सकल दूर दहावता।।

उनकी कृपामयी दृष्टि सभी जनों को जो अनाथ-सा हैं उन्हें सनाथ (रक्षक बनकर रक्षा प्रदान) करती है। दया के समुद्र-सा वन, नाला, नदी–जैसे उमड़-उमड़ कर अपने दोनों तटों की गन्दगी को दूर फेंक देती है उसी प्रकार भगवान अपनी दया समुद्र से पापीजनों के हृदय शुद्ध कर उसके पापों को दूर दहाकर फेंक देते हैं।

ज्यों दिव्य दक्षिण हस्त में श्रीअस्त्रराज विराजहीं।
त्यों तेजमय अतिपाञ्चजन्य सुवामकर वरगाजहीं।।

भगवान के दक्षिण हाथ में अस्त्रराज (श्रीसुदर्शन-चक्र) उनका प्रधान अस्त्र विराजित है तथा वाम हाथ में श्रीपाञ्चजन्य (उनके दिव्य शङ्ख वह भी आयुध ही का काम करताहै) विराजता है।

हैकान्तिमत्सुन्दर पीताम्बर अति विचित्रकिनारियाँ।
सो काछनी कटि में सुहावनि, सबन के मनहारियाँ।।
वनमालऔ मणिमाल अगणित, पुष्प मोतिन लर रहे।
पुन तैसहीं भगवान के भगवान माला बन रहे।।

अत्यन्त दिव्य कान्तियुक्त पीताम्बर जिसका किनारा सुन्दर ढंग से बना है उनके दिव्य मङ्गल विग्रह में दृष्टिगोचर होता है तथा सुन्दर काछनी (कटि प्रदेश का भूषण) विराजित है। साथ ही गला वक्षस्थल प्रदेश में अनेक वनमालाओं मणी मोती-मालाओं की लड़ी लटकी रहती है एक विशेष भूषण माला स्वर्णमय जिसमें छोटे-छोटे शालग्राम को सजाकर बनाया गया है विराजमान है।

औश्रवण कुण्डल मुकुट भूषण गणनमें बहुमणि गणा।
जनु श्याम घनमें दामिनी बहु चन्द्र रवि तारे गणा।।

कर्ण-कुण्डल, मुकुट विविध मणीमयी भूषणों से सुसज्जित दिव्य-मङ्गल विग्रह वैसे ही प्रतीत होता है जैसे श्यामल मेघ में दामिनी (विद्युत चमकती) हो अनेक तारेगण प्रतीत होते हों।

चरण की ओर हाथ से सङ्केत करने का अभिप्राय

प्रभु दिव्यदक्षिण हस्त से
निज चरण शरण बतावहीं।
ना भव तुम्हारे जानु लो सो,
वाम से दिखलावहीं।।

वेङ्कटेश भगवान का दिव्य विग्रह चतुर्भुज रूप में है। उनकी इस प्रकार की हस्तमुद्रा है जिसे देखकर बोध होता है कि वे अपने दायें हाथ से जीवों के उद्धार हेतु (शरणागत होने का सङ्केत करते हुये) अपने चरण कमल की ओर निर्देश कर रहे हैं इसी के आश्रयण से सबों का उद्धार सम्भव है। ***'सर्वधर्मान् परित्यज्य'*** इस चरम मन्त्र में भी ***'मामेकं शरणं व्रज'*** इस वाक्य के शरणं पद चरण का ही बोधक है। चरण के अधिष्ठातृ देव भगवान विष्णु हैं, अत एव वे स्वयं ही युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ***'कृष्णपादावनेजने'*** सभी अतिथिगणों के पाँव धोने में नियुक्त थे। व्यवहार में भी देखा जाता है कि किसी से भी काम करवाना हो तो उसे चरण पकड़ कर सुविधा से करवाया जा सकता है; क्योंकि चरण पकड़ने से हृदय पकड़ा जाता है, इसी उद्देश्य से भगवान जीवों के कल्याणार्थ अपने चरण की ओर हाथ किए हुए विराजमान हैं। इस प्रकार वाम हाथ से वे अपनी जानु की ओर निर्देश द्वारा यह बोध करा रहे हैं कि यह संसार जिसे संसारी जीव दुष्पार भयङ्कर समुद्र-सा समझ रखा है वह जानुभर ही है अर्थात् ठेहुनाभर पानी में जैसे आवाल वृद्ध सुलभतया पार हो जा सकते हैं वैसे ही यह संसार भी मेरे चरणों की शरण में आ जाने पर (संसार सागर) जीव के लिए अतीव लघु हो जाता है।

वह ज्योति जगमग जासु दशदिश
विदिशिहूँ छायी महाँ।
सो देखते दरशक गणों के
भागते अघतम महाँ।।

उनकी दिव्य ज्योति की जगमगाहट जो दसों दिशाओं में व्याप्त है वह दर्शकों के अघ (पाप) समूह को दूर भगा देता है।

फणिराज पङ्कज रूप धरकर
दिव्य आसन सोहहीं।
हो दल अनेको पाद तल सो,
लखत मुनि मन मोहहीं।।

वेङ्कटाद्रि में श्रीनिवास भगवान के पाँव तले सहस्रदल वाला कमल है जिस पर वे खड़े हैं। वह कमल स्वयं फणिराज शेषजी हैं, जो भगवान के साथ सतत सर्वत्र सेवारत रहते हैं। वही कमल बनकर विराजमान हैं। शेषजी को इस रूप में देखकर मुनिगण भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं।

व्यूह पर वैभवन व्यापी हुँ कोन पाते यत्न से।
भगवान अर्चारूप धरकर जनन से मिल सुगम से।।

भगवान भक्तों के कल्याणार्थ पाँच रूपों में सतत सचेष्ट रहते हैं—

(१) पर–परात्पर वैकुण्ठ में विराजमान श्रीमन्नारायण।

(२) व्यूह–वैकुण्ठाधिपति पर स्वरूप श्रीभगवान ही सृष्टि, पालन, संहार, सांसारिक चेतनों की रक्षा और उपासकों के ऊपर अनुग्रह के लिए वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप में हो जाते हैं। वे ही चतुर्व्यूह कहलाते हैं। भगवान वासुदेव छः गुणों से सम्पन्न होते हैं। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध में से प्रत्येक दो-दो गुणों की प्रधानता लेकर आते हैं।

(३) **वैभव**–राम, कृष्ण, वामन, परशुराम आदि अवतार।

(४) **अन्तर्यामी**–जो सबों के हृदय में निवास करते हैं।

(५) **अर्चावतार**–जो इस धरा धाम पर स्वयं व्यक्त अथवा प्रतिष्ठापित भगवान के विग्रह मन्दिर आदि में विराजमान हैं।

उक्त पाँचों प्रकारों में, पर व्यूह और वैभव वह तीन रूप वाले भगवान को कौन देख सकता है? अर्थात् कोई नहीं। वह तो परोक्ष का विषय है, अत: वे सर्व जनकल्याणार्थ तथा सबों के विश्वासार्थ अर्चारूप में विराजमान हो गये हैं। जिसे देखकर हम सभी कल्याण भागी बन रहे हैं। यह अर्चा विग्रह की विशेषता है।

पर्ण फल जल पुष्प से सेवा सुलभ अति प्रेम से।
इसके लिये यह तन मिला लख व्यास के उपदेश से।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

'यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्' इत्यादि विषयों को ही इस पद के द्वारा दर्शाया गया है। इसी समर्पण भावना से संसार बन्धन छूटेगा अन्यथा नहीं।

'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात्'
'यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः'

भगवान के आदेशानुसार इन्हीं क्रियाओं के द्वारा संसार बन्धन से मुक्ति मिलेगी व्यासादिकों का भी यही उपदेश है, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भगवान जीवों को शरीर प्रदान किया करते हैं।

भूधर समान न और भूधर भूमि पर पाते कहीं।
सद्ग्रन्थ में जब देखते, इनके सुयश सर्वत्र हीं।।

वेङ्कटाद्रि पर्वत के समान पृथिवी पर और कोई दूसरा पर्वत पवित्र और मुक्तिप्रद नहीं है; क्योंकि भगवान नारायण स्वयं इसी पर्वत पर व्यक्त हुए हैं। वेङ्कटेश का सुयश सर्वत्र सद्ग्रन्थों में गाया गया है।

है धन्य कुधर शिखर अहो तिहुँलोक नायक को धरे।
ले साथ में आकाश गङ्गा धार झर झर झर झरे।।
औ अनन्तालवार के पावन सरोवर है जहाँ।
है मुक्ति की इच्छा जिसे वैकुण्ठ में रहते तहाँ।।

वह पर्वत धन्य है जिसके ऊपर त्रिलोक नायक विराजमान हैं। इसी पर्वत पर आकाश गङ्गा, अनन्त आलवार द्वारा निर्मित बहुत विस्तृत अनन्त सरोवर है जो मन्दिर से नैऋत्यकोण (अनन्तालवार नगर) में है यात्रीगण इसमें स्नान करते हैं। मुक्ति की इच्छा वाले बड़भागी व्यक्ति ही वहाँ (पृथिवी के वैकुण्ठ में) निवास एवं आश्रय पाते हैं।

रामानुज स्वामी प्रभु वेङ्कटेश के श्वसुर गुरु कैसे?

भाष्यकार स्वयं जिन्हें बन श्वसुर गुरु सेवा किये।
सबदास को शिक्षा दिए अरु आप पावन यश लिए।।
प्रथमोऽनन्त रूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणश्तथा।
तृतीयो वलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः।।

शेषजी भगवान की सेवा में शय्या, आसन, वाहन, पादुका, आवश्यकतानुसार छत्रचामरादि सभी रूपों में परिणत हो नित्य सेवा किया करते हैं। वही अनन्त भगवान के रामरूप में अवतरित होने पर सेवार्थ लक्ष्मण बने, उन्हें कृष्ण रूप में अवतरित होने पर वे ही वलराम तथा उसके पश्चात् रामानुज रूप में अवतरित हो वैष्णव धर्म का संवर्द्धन कर भगवान के ही कैङ्कर्य परायण थे। यही राजानुजाचार्य भाष्यकार संज्ञा से भी जाने जाते हैं। उन्होंने श्रीभाष्य का निर्माणकर भगवत्कैङ्कर्य किया है। कथानक ऐसा है कि कुछ काल पूर्व भगवान वेङ्कटेश को लोग शिव-शक्ति आदि रूपों में ही आराधना किया करते थे। इस अज्ञानता का निवारण

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी ने किया। तत्काल विद्यमान राजानुशासन द्वारा भगवान के मन्दिर में तत्तत्रूप में आराधकों के अभिमत सभी देवों का आयुध अस्त्रादि रखा गया और घोषणा कर दी गयी कि वास्तविक में जो देव विराजमान हैं वे अपना आयुध सम्भाल लेंगे। पश्चात् मन्दिर का द्वार बन्द कर दिया गया, सील मोहर पड़ गया। प्रहरियों का नियोजन हो गया।

प्रात:काल मन्दिर सबों के समक्ष खोलने की वचनबद्धता हुई। रात्रि में ही भाष्यकार स्वामी ने विचारा कि यदि आज इन्हें शङ्ख-चक्रादि विशेष आयुधों से सुसज्जित नहीं कर देता हूँ तो सब दिन भगवान शिव, शक्ति आदि ही कहाते रहेंगे। अत: युक्ति सोचकर वे स्वयं सर्प के रूप धारण कर मन्दिर के नली द्वारा मन्दिर में प्रवेश कर उनसे प्रार्थना किया कि महाराज आज आप अपना निजी आयुध शङ्ख-चक्र स्वीकार करें अन्यथा सब दिन शिव-शक्ति आप कहाते रह जायेंगे और वहीं रखा हुआ शङ्ख-चक्र आयुध से उन्हें सुसज्जित कर दिया और वे बाहर उसी नली द्वार से आ गये। ताला आदि बन्द ही था। प्रात: हुआ और राजाज्ञा से मन्दिर सबों के समक्ष खोला गया तो लोगों ने देखा कि भगवान वेङ्कटेश शङ्ख-चक्र (अपना आयुध) लिये विराजमान हैं। अत एव श्रीरामानुज स्वामी उनके गुरु कहलाये; क्योंकि जो शङ्ख-चक्र आयुधदाता होता है, वह गुरु कहलाता है।

क्षीर सागर में लक्ष्मी के साथ विराजमान विष्णु पर भृगु ने पाद प्रहार किया था, जिस कारण से लक्ष्मी रुठकर वैकुण्ठ छोड़कर तिरुपति पहाड़ से नीचे जहाँ आज भी विराजमान हैं चली आयीं वैकुण्ठ लक्ष्मी बिना शून्य हो गया। भगवान भी उन्हें खोजते हुए वहीं पहुँचे, किन्तु वे पहाड़ के ऊपर जिसे आज वेङ्कटाद्रि कहा जाता है विराजामन हो गये। ऐसी स्थिति से भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामी ने पहाड़ पर मन्दिर में लक्ष्मीजी की (उत्सव मूर्ति की) प्रतिष्ठा की। अत: लक्ष्मी प्रदाता होने से वे वेङ्कटेश के श्वसुर भी कहलाते हुए सेवा किए हैं। यही भाव इस पद्य में भाष्यकार स्वयं जिन्हें बन श्वसुर गुरु सेवा किये द्वारा व्यक्त किया गया है।

वह धन्य नर जो देखते पल स्वप्न में उस ठाम को।
सो देव है नर नर नहीं है नरण में भगवान को।।

वह व्यक्ति धन्य है जो स्वप्न में भी एकपल समय देकर उस स्थान का दर्शन करता है। वह सामान्य नर नहीं बल्कि देव है— ***'सो जानई जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होई जाई'*** । वह नर भगवान तुल्य पूज्य हो जाता है भगवान के कृपा पात्र हो जाता है।

भव भीति का ना डर कभी जो मन बसे हरिगीतिका।
आशा बड़ी युग चरण की है, है कृपा परिपालिका।।

हरिगीतिका छन्द में कथित ऊपर का विषय जिसके मन में स्थित हो गया है उसे किसी प्रकार की सांसारिक समस्याओं से डर नहीं है। भगवान के युगल-चरणों की शरण में रहने के कारण पूर्ण आशा है कि उनकी कृपा मुझे अवश्य संसार बन्धन से मुक्त करने वाली होगी।

हैं प्रणतपाल कृपालु हरि के चरण धर जीवन लहो।
सो दीन बन्धु दयालुतावश द्रवित होंगे ही अहो।।

भगवान प्रणतों के पालन करने वाले हैं कृपालु हैं वात्सल्य, स्वामित्व, सौशिल्य, सौलभ्य तथा शक्ति प्राप्ति, पूर्ति आदि विशेष गुणों से विशिष्ट हैं। अत: अवश्य हम सबों की दयनीय स्थिति से अवगत हो द्रवित हो अपना लेंगे।

श्रीलक्ष्मीनारायण का चमत्कार

(स्थल पुराण और महिमा)

आलय परिचय

चिन्ताग्रस्थ मानव के उद्धार के लिए भगवान को सर्वव्यापी होना पड़ा। भक्तों की बन्धन प्रवृत्ति को शिथिल करने के लिए सदा उन्निद्र रहना पड़ता है, नाम यद्यपि अनन्तशयन हैं। कलियुग के युग-प्रभाव को क्षीण करने के उद्देश्य से सत्कार्य करने की प्रवृत्ति को उत्तेजित करने के लिए, कल्याण परम्परा को देने के लिए गुणत्रयातीत रूप से सगुण-मूर्ति के रूप से श्रीमन्नारायणमूर्ति वेपञ्जेरी में स्वयं विराजमान हैं।

वेपञ्जेरी तिरुपति से दक्षिण की ओर ६० किमी० दूरी पर, चित्तूर से पूर्व में १५ किमी० एवं वेल्लूर से उत्तर की ओर प्राय: ४५ किमी० की दूरी पर स्थित है।

नाम ग्राम की व्युत्पत्ति नहीं पूछी जाती–यह लोकोक्ति जगत् प्रसिद्ध है, पर उसमें एक गुढ़ ऐतिहासिक अंश छिपा रहता है।

ग्राम का मूल नाम वेपञ्चहारी था। वे पाप, पञ्च पाँच, हरी हरने वाला, ऐसा परम्परा प्राप्त है। पञ्च पद प्रयोग से पञ्च महापातक ऐसा अर्थ लेना होगा। इन पातकों का प्रायश्चित्त अतिदुष्कर है, कष्टसाध्य है। पर यहाँ विराजमान भगवान लक्ष्मी-नारायण के दर्शन मात्र से ये पातक सिंह को देखकर शृङ्गाल जैसे पलायन करते हैं, ऐसे पाप-पुञ्ज स्वयं विदुरित हो जाते हैं। कल्पपादप भी यहाँ के देवता का नाम है। अन्य देवता तो भक्त के माँगने पर (मन में ही सही) वर देते हैं, पर वेपञ्जेरी के लक्ष्मीनारायण स्वामी बिना बताये भक्त के मन में क्या है, यह स्वयं जानकर प्रदान करते हैं।

स्थल पुराण

चोल सम्राट कुलोत्तुंग तृतीय के काल में इस मन्दिर का प्राचीनतम सन्दर्भ प्राप्त है। इस क्षेत्र पर ७५० वर्ष पूर्व कुलोत्तुंग तृतीय राज्य करते थे। सन्त-साधुओं का, योगी-अवधूतों का यहाँ सङ्गम होता ही रहता था। राजे-महराजे भी अपनी व्यथा यहीं भगवान के श्रीचरणों में निवेदित करते थे। यहाँ की प्राकृतिक छटा निराली है। कोकिल की कूज से अनु-गुञ्जित आम्र के बगीचे, लहलहाती धान के खेतों से विलसता चहुँदिक् परिसर, इक्षु दण्ड गुड़ की मधुरिमा से सदा मधुमास जैसे मनमोहक चित्ताह्लादक वातावरण किसके मन को न मोह लेगा।

ऐतिहासिक तथ्य

परमात्मा ही कूटस्थ है। बाकी सब तो परिवर्तन-शील है। संसार में क्षयिष्णुता एवं वर्धिष्णुता चक्रगति से चलती है। गाँव के भी बुरे दिन आये। वरुण का प्रकोप हुआ। पृथिवी माता के पुत्रों के देखते-देखते भू शुष्क काष्ठ के समान प्रस्तरसम हो गयी। मूक पशु चारा एवं जल के अभाव में अपनी करुण कहानी केवल सतत प्रवहमान नयनाश्रुप्रवाह से ही करते थे। सम्पन्न लोगों ने ग्राम छोड़ दिया। भौतिक सुविधाओं के अत्यन्ताभाव में सरकारी अफसरों ने गाँव में आना छोड़ दिया। गरीब को गरीबनवाज के अतिरिक्त अन्य कहाँ ठौर थी? भगवान तुम्हीं हमारे ग्राम देवता हो। तुम्हीं ने हमको जन्म दिया है। तुम्हीं हमको जिन्दा भी रखोगे। ***'अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम'*** की सच्चे दिल से निकली पुकार कैसे निष्फल होती? तुम्ही ने दर्द दिया, तो दवा भी तुम्हीं दोगे, चरितार्थ हुआ। ग्राम की तीव्र अनावृष्टि भगवत् सेवा पराङ्मुखता है। जिनका स्वप्राण रक्षण का सामर्थ्य लुप्त हो गया है, वे भगवद्भजन नैवेद्य आदि कैसे करते? उपाय भी भगवान ने एक दिन

कुछ भक्तों के स्पप्न में आकर सुझाया।

तिरुपति में के०आर० श्रीधर नामक एक न्याय-वादी इसी ग्राम के मूल निवासी हैं। वे आस्तिक हैं। भक्ताग्रेसर हैं। वे तुम्हारी पुकार सुनकर तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे। भगवद् वचन सुनकर ग्राम के निवासी तिरुपति श्रीधर वकील के घर को आये। उनके सामने अपना दुखड़ा रोया। अपनी करुण कहानी सुनायी। भगवान अनेक ग्रामवासियों के स्वप्न में आकर उनके नाम का प्रस्ताव रखा है यह भी बताया। भगवदाज्ञा समझ कर श्रीधर ने शिरोधार्य किया। बस, वेपञ्जेरी ग्राम की तकदीर पलट गयी। उत्साहपुलकितगात्र श्रीधर भगवदाज्ञा में साग्रह प्रवृत्त हुए। ***'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'***। गीता में उक्त भगवद्वाणी उनके मस्तिष्क पटल पर सदा गूँजती रही। सन् १९८६ का वर्ष था। मई ११ वर्ष के पूर्वार्द्ध में मन्दिर के जीर्णोद्धार का श्री गणेश हुआ।

नारायणस्वामी पर दिव्यावेश

श्रीनारायण स्वामी के भगवत् कैङ्कर्य के फल-स्वरूप प्रसन्न हो दयारूपिणी लक्ष्मी ने श्रीभगवान नारायणको भक्त श्रीनारायण स्वामी के लिए कुछ बिभूति प्रसादित करने की प्रार्थना की। भगवान श्रीलक्ष्मीनारायण ने तत्काल श्रीनारायण स्वामी को अपना एक अंश प्रसादित किया, जो आवेश रूप से स्वामी के देह में कुछ क्षणों को पूजा के अनन्तर दृष्टिगत होता है। यह दिव्यावेश श्रीनारायण स्वामी को एक अति-भौतिक स्थिति में पहुँचा देता है, जहाँ पर देह तथा इन्द्रियाँ भौतिक अर्थ में काम नहीं करती। इन्द्रियाँ इन्द्रियार्थों की ओर नहीं दौड़ती। मन इन्द्रियों के द्वारा प्रदत्त सूचना को स्वीकार नहीं करता। शुद्ध संविद उस अवस्था में रहता है। चैतन्य मात्र। देह की सुध नहीं रहती। सामाजिक मर्यादाओं का बोध नहीं रहता। एक स्थिति जो सांसारिक नहीं कही जा सकती, उनको प्राप्त हो जाती है। ज्ञान एवम् अनन्तता दो गुण सामान्य रूप से दिखने लग जाते हैं। जो भूत-भविष्य है, वह भी चक्षुओं के सामने प्रत्यक्ष जैसा दिखने लगता है। पाप प्रक्षालन एवं प्रायश्चित्तविधि स्मार्ताचार में देह कष्ट पर अधिक बल दिया जाता है। कृच्छ्रा-चार, चान्द्रायण अनेकविध उपवास कराये जाते हैं। पर वैष्णव सम्प्रदाय में शरणागति प्रधान है। नाम स्मरण से सारे पाप घुल जाते हैं; क्योंकि भगवत्कृपा या दिव्यानुग्रह का सिद्धान्त स्वीकार है। अत एव यह दिव्यानुग्रह श्रीनारायण स्वामी के माध्यम से कृपानुकाङ्क्षी भक्तों तक पहुँचता है। उन आवेश के क्षणों में उक्त वचन सत्य होते हैं। आशिष सत्य होते हैं। मुख से जो निकलता है, वह सत्य होता है— ***'वाचमर्थोऽनुधावति'*** प्रोक्त वचनों में कार्यपरिणति रूप सामर्थ्य अपने आप आ जाता है। यही है भौतिक कारण-कार्य के नियम से अन्तर्मुक्त न होने का रहस्य। दिव्यावेश।

लघुमूर्ति कीर्ति विशाल

'दुःख में सब सुमिरन करै, सुख में करे न कोय'। यह कवि की उक्ति, सर्वत्र एवं सर्वकालिक सत्य है। पीड़ित मानव जो स्वामी लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में भगवान के दर्शन के लिए आते हैं, वे सन्तान सुख से वञ्चित, बाधा से परेशान, वृत्तिहीन, असाध्य एवं पाप रोगों से पीड़ित, व्यापार में भारी हानि से त्रस्त या ऐसे ही संसार को दूभर मानने वाले आते हैं। पर श्रीलक्ष्मीनारायण स्वामी का वात्सल्य श्रीनारायण स्वामी के माध्यम से सब कष्टविमुक्त होते हैं। श्रीलक्ष्मीनाराण मन्दिर में भगवत् सेवा कार्य चलते ही रहते हैं। अनेक विध पूजा परायण कार्यों में भाग लेने का अपूर्व अवसर प्राप्त है, जिससे होम, जप, सुदर्शन होम, अभिषेक अष्टोत्तरशत एवं सहस्रनामावलि, अर्चना, कल्याणोत्सव, प्लवोत्सव आदि वर्ष भर चलने वाले भगवत् सेवा कार्यों में भाग लेने का भी अवसर प्राप्त होता है। मन्दिर के अधिकारीगण कष्टग्रस्त मानवों को

भगवत् सेवा के लिए भी अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे मनुष्य अपने जीवन सुधार सके। कष्टों से निर्वाण पा सके। सचेतन प्रयत्न मनुष्य ही कर सकता है पशु आदि नहीं।

आलय:सुन्दर स्थापत्य

आलय की सुन्दरता उसके मुख्य द्वार से है। मुख्य द्वार पर अत्युच्य गोपुर नहीं हैं। तब भी दोनों ओर बने विशाल चतुष्कोणाकार चबूतरों से पुरस्कृत विशाल समार्धवृत्त की शैली का मुख्य द्वार है। द्वार के ऊपर की पट्टिकायें विविध पौराणिक चित्रों से मण्डित हैं। निश्चय ही उनका उद्देश्य मन्दिर में आने वाले दर्शनार्थियों की चित्तवृत्ति को सात्विक बनाना होगा।

प्रवेशद्वार से प्रहरी मन्दिर के चारों ओर निर्मित है, जिससे अवाञ्छित मनुष्य या पशु मन्दिर में प्रवेश न कर सकें।

तत्पश्चात् सर्वप्रथम दृष्टिपथ पर आरुढ होता है, गगनचुम्बी ध्वजस्तम्भ।

इसके पश्चात् आरम्भ होता है परिक्रमा पथ। परिक्रमा पथ विशाल है। कणाश्मीय प्रस्तर खण्डों से रचित।

इसके पश्चात् है गरुड़ की मूर्ति। एक छोटे से प्रकोष्ठ में सदा दीपकान्ति भास्वर। भगवान के सामने सदा दर्शन करते रहने की गरुड़ की इच्छा का सम्मान करने के लिए निर्मित।

तत्पश्चात् होता है अर्धमण्डप में नानाविध चित्र। महादेशिक के प्रतीक के स्मारक रूप में एक घण्टा बना है, इस मण्डप में आठ प्रस्तर स्तम्भ हैं। जिन पर कल्पवल्ली अङ्कित हैं। अदृश्य, मूल मध्य में पुष्प परिणति एवं पुन: वल्लभी (जगमोहन के ऊपर बना प्रकोष्ठ जो दूर से दिखाई पड़े) प्ररोहमान अवस्था में छत की ऊँचाई में विलीन होती हुई प्रतीत होती है।

मण्डप गर्भगृह से सटा है। यहाँ पर द्वारपालों को देखा जा सकता है। आकृति सुन्दर एवं भगवत् सेवा में तत्पर दिखाई गयी है। जिससे विनय टपकता है। प्रवेश द्वार की चौखट अलङ्करणों से युक्त है।

इसके पश्चात् गर्भगृह है। वही भारी भरकम दीवालें। छोटा-सा तमसावृत भगवद्धाम अभिषेक जल की निकासी के लिए प्रमालिका है। तीन फीट से अधिक की ऊँचाई पर भगवान विराजमान हैं। भगवान की मूर्ति भव्य एवं सुन्दर है। दिव्याभरण एवं दिव्यायुधों से शोभायमान। वात्सल्यरूपिणी श्रीमहालक्ष्मी श्रीमन्नारायण मूर्ति के अङ्क में विराजमान।

मूर्ति सुन्दर एवं भक्ति उत्तेजिका है। दर्शन करने पर मनश्शान्ति प्राप्त कर मानव कुछ क्षणों के लिए आत्माराम हो जाता है। अभय मुद्रा में ऊपर उठा दक्षिणबाहु उसके ऊपर हाथ में सहस्त्रार सुदर्शन है। उभयविध सामर्थ्य दर्शन का मूर्तरूप है और श्रीमहालक्ष्मी वामाङ्क में एक या दो का संशय सदा बनाये रखती है। चणक धान्य के समान है। श्रीमन्नारायण की कार्यवाहिका शक्ति है या स्वतन्त्र वात्सल्यमूर्ति, जो अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए भगवान से सदा सिफारिश करती है।

मूर्ति के संदर्शन पर भगवद्गीता में भगवद् वचन (***योगक्षेमं वहाम्यहम्***) का साक्षात् निदर्शन यहाँ उपस्थित है।

दशावतार तीर्थ

आलय से अनति दूर पर ईशान्य में पुष्करिणी है। सदा पुण्यसलिला पुष्करिणी प्रस्तरमय सोपान-पङ्क्ति से सज्जित है। पुष्करिणी के चारों ओर दशावतारों की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

दशावतार विग्रह

यहीं पर २१ फीट ऊँचा भगवान का विराट् स्वरूप है, जिसमें दसों अवतारों की एकल झाँकी है। जो इस मूर्ति को देखता है, वह गीता के विश्व रूप दर्शन की झाँकी यहाँ प्रत्यक्ष अनुभव करता

है। चतुर्दश भुवन, पञ्चभूत, मत्स्यकूर्म, परशुराम, दाशरथीराम सभी इसमें निबद्ध हैं। अपनी कलात्मकता विविधता में एकता को समन्वित आश्चर्य कर परिकल्पना शक्ति, तदनुगुण शिल्प परिणति इस विग्रह में देखते ही बनती है।

मूर्ति का रूप अत्यन्त सौम्य एवं कमनीय है। पर समस्त ग्रामवासियों के किसी प्रकार के आपत्-निवारण के लिए कटिबद्ध। दूरतर प्रसारित नयनों से आपत्समूह को दूर से ही निवारित करने का सन्देश देता है।

शिल्प नैपुण्य से अधिक प्रशंसनीय है—भाव-भङ्गिमा की परिकल्पना, जिसमें करुणार्द्र—हृदयता टपकती है।

अष्टलक्ष्मी देवालय

अष्टलक्ष्मी देवालय वेपञ्जेरी की हृदयगति है। समीप स्थित राजमार्ग से प्रयाण करते हुए बसयात्री मन्दिर शिखर का दर्शन कर अपने आपको कृतार्थ समझते हैं। देवालय दर्शन को ही पुण्योदय मानते हैं। अष्टलक्ष्मी पूजा पुराण प्रख्यात है। अष्टलक्ष्मी ये हैं—(१) गजलक्ष्मी, (२) वीर लक्ष्मी, (३) ऐश्वर्य-लक्ष्मी, (४) धान्य लक्ष्मी, (५) आदि लक्ष्मी, (६) सन्तान लक्ष्मी, (७) विजय लक्ष्मी और (८) धन लक्ष्मी।

१. समस्त प्रकार के कष्ट निवारण के लिए आदि लक्ष्मी।
२. कृषि में अभिवृद्धि के लिए धान्य लक्ष्मी।
३. भय निवारण के लिए वीर लक्ष्मी।
४. विवाह सम्बन्धों के लिए एवं सन्तान भाग्य के लिए सन्तान लक्ष्मी।
५. सकल विध सौभाग्य प्राप्ति हेतु गज लक्ष्मी।
६. सङ्कल्पित कार्यों की सफलता प्राप्ति के लिए विजय लक्ष्मी।
७. विद्या में पुरोगति, स्मरण शक्ति के विकास के लिए ऐश्वर्य लक्ष्मी।
८. गृह, वाहन, धन, नौकरी में अभ्युन्नति के लिए धन लक्ष्मी।

सर्वविध धन-धान्य, पुत्रकलत्र, भूहिरण्य आदि की समृद्धि के लिए अष्टलक्ष्मी समेत श्रीलक्ष्मी नारायण स्वामी अनुग्रह प्रदाता के रूप में यहाँ विराजमान हैं। ●

भक्त हेतु प्रभु ने पल्लव बिछाया

परमात्मा का ध्यान करते हुए तोंडमान ने शयन किया था। फलत: सपने में भगवान श्रीनिवास ने राजा को बिल का मार्ग दिखाया और उनके नगर से बिल के अन्त तक मार्ग में पल्लव बिछा दिये। राजा यह स्वप्न देखकर जब सबेरे उठे, तब उन्होंने शीघ्र ही मन्त्रियों, प्रजाओं और ब्राह्मणों को भी बुलाया। उन सबसे अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाकर जब उन्होंने दरवाजे पर दृष्टि डाली तब वहाँ पल्लव बिछे हुए दिखायी दिये। पश्चात् उपयुक्त मुहूर्त्त में घोड़े पर सवार हो राजा तोंडमान घर से चले और बिल के पास पहुँचकर वहीं उन्होंने नगर बसाया। उस समय देवाधिदेव भगवान ने स्वयं राजा को यह आदेश दिया अर्थात् सङ्केत किया कि इमली और चम्पा–ये दो वृक्ष बहुत उत्तम हैं, इनका पालन करों। इमली मेरा आश्रय है और चम्पा लक्ष्मीजी का स्थान है। अत: राजाओं, ऋषियों, देवताओं तथा मनुष्यों को इन दो वृक्षों की वन्दना करनी चाहिए।

तोंडमान से ऐसा कहकर भगवान विष्णु चुप हो गये। उनका वचन सुनकर राजा ने चाहरदिवारी बनवायी और वैखानस कुल के मुनियों से पूजन कराया। वे प्रतिदिन बिल के मार्ग से आकर भगवान को प्रणाम करते और लौट जाते थे। उन्होंने उत्तम कार्य करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया। ●

मन्त्र तथा आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदन व प्रार्थना प्रणाली देह एवं आत्म शुद्धि हेतु आवश्यक साधन सम्पत् हैं। देह में मन बुद्धि सम्मिलित हैं। स्नान का हिन्दू धर्म में अत्यन्त महत्त्व हैं। अत: श्रीलक्ष्मीनारायण के दर्शन करने के पूर्व स्नान जो देह शुद्धि का अनिवार्य अङ्ग है, पूर्ण कर लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके बिना फटे-सीये हुए कपड़े पहिने, अर्थात् नूतन धोती धारण करें। उत्तरीय का प्रयोग ऊर्ध्व शरीर के लिए करें। स्वच्छ देह पर स्वच्छ वस्त्र होना चाहिए। स्वच्छ मन के जप— ***'जपतो नास्ति पातकम्'*** लोक प्रसिद्ध ही है। सुदर्शन मन्त्र-मूल मन्त्र का जप करे। अपने सामर्थ्यानुसार १०८ बार या कम से ११ बार। रामतापनीयोपनिषद् में (१२) ***'मननात् त्राणनात् इतिमन्त्र:'*** ऐसा अर्थ दिया है। अर्थात् मन्त्र वह है जो रक्षा करे। मनुस्मृति २.२६ में मन्त्र को मन एवं शरीर का संस्कर्त्ता माना है मन्त्र में दैवी शक्ति है। मन्त्र बिजली के समान एक शक्ति है। इस शक्ति से चाहे बल्ब जला ले या पङ्खा चलाये। जैसे सूर्य का प्रकाश एवं ताप से फसल पर ९० दिन या ९ महीने का प्रभाव अलग देखा जा सकता है, वैसे ही मन्त्र का प्रतिदिन जाप आत्मा की शक्ति को सतेज करता है। अभ्यास का यह प्रभावी गुण सङ्गीतज्ञों, पहलवानों में या अन्य क्षेत्रों में देखा जा सकता है। मूलमन्त्र सुदर्शन मन्त्र का जितनी बार अधिक जप करोगे, उतना ही मन्त्र सामर्थ्य उत्तेजित होगा। जैसे कटु करेले को बार-बार नींबू के रस में भावित करने पर करेला अपनी कड़वाहट को छोड़ देता है और नींबू की खटाई अपना लेता है, ऐसे ही मन्त्र का बार-बार जप करने पर मन्त्र का पाठक भगवदंश का अनुभव करता है। **(सप्तगिरि से साभार)**

●

तीर्थ का फलभागी कौन?

तीर्थ क्षेत्र में जाकर अपने मन के वश में रखते हुए नियम पूर्वक रहना चाहिये। यथासम्भव पृथिवी पर सोना चाहिये और पत्तल में भोजन करना चाहिये। जिसके हाथ, पाँव और मन सुसंयत हैं अर्थात् जो हाथों से चोरी आदि कोई निन्द्य कर्म नहीं करता, पाँवों को व्यर्थ भ्रमण में नहीं लगाता और मन को विषय-वासनाओं की ओर से अवरुद्ध कर लेता है। वह तीर्थ फल का भागी होता है। जो तीर्थ पर जाकर स्वयं दान ग्रहण नहीं करता किन्तु अपनी शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक दान देता है, विद्वान् ब्राह्मणों, सन्त महात्माओं का सम्मान करता और अधिक से अधिक समय धर्माचरण जप-तप, सत्सङ्ग, भगवद्दर्शन में व्यतीत करता है वही वस्तुत: तीर्थ का फलभागी होता है। ●

भगवान मिट्टी ढोना चाहते थे

एक बार अनन्ताचार्य स्वामी श्रीवेङ्कटेश भगवान के लिए बगीचा लगाकर उसको सींचने के लिए एक तालाब खोद रहे थे और बार-बार उसकी मिट्टी बाहर डाल रहे थे। उस समय एक बालक आकर स्वामी जी से मिट्टी की टोकरी लेना चाहा तब स्वामी जी ने कहा मैं भगवान एवम् आचार्य की प्रसन्नता के लिए मिट्टी की टोकरी ढो रहा हूँ, इस दशा में इसको त्यागने में मुझे परिश्रम और लेने में तुमको परिश्रम होगा। उस बालक ने परिश्रम न होगा ऐसा कहकर उनसे टोकरी लेनी चाही। उस परिस्थिति में अनन्ताचार्य स्वामी ने कहा—तब तो मेरे जीवन का कोई साधन ही नहीं रहेगा। यदि तुमको यह कैङ्कर्य (सेवा) अभिमत है तो दूसरी टोकरी लेकर ढोओ। अभिप्राय यह है कि भगवान के कैङ्कर्य करने में ही जीवन की सफलता है। ●

तिरुपति यात्रा-मार्गदर्शन

जन्म से लगायत मृत्यु पर्यन्त मनुष्य विभिन्न कामनाओं से भरा होता है। इन कामनाओं की पूर्ति के लिए वह आजीवन अथक परिश्रम करता रहता है। वह व्यक्ति सामान्य जीवन जीने वाला गृहस्थ हो या मोक्ष की कामना रखने वाला मुमुक्षु सबके पास कोई न कोई कामना अवश्य रहा करती है। बीतरागी जीवन वाले साधना और अन्य वैसे कर्म जो सामान्य (जन के लिए कड़े हैं) के द्वारा अपना कल्याण कर लेते हैं। लेकिन सामान्य जीवन जीने वाले मनुष्यों को भौतिक इच्छा के साथ-साथ भगवान के प्राप्ति की इच्छा भी पूरी हो ऐसे किसी सरल मार्ग के खोज में भटकते हुए जब हम शास्त्रों का अध्ययन करते हैं तो सार स्वरूप एक सरल मार्ग दिखायी देता है। यह मार्ग सरल के साथ-साथ आज के समय में सम्भव भी प्रतीत होता है और वह है–तीर्थ-यात्रा।

यों तो शास्त्रों में अनेकानेक तीर्थों का वर्णन है। पूरा भारतवर्ष विभिन्न तीर्थों को अपने में संजोकर रखे हुए है। लेकिन वर्तमान समय में सभी तीर्थों की श्री मानी वेङ्कटाद्रि पर्वत पर विराज रहे कलिनायक भगवान वेङ्कटेश में समाहित है। यह दिव्य क्षेत्र वस्तुत: सभी तीर्थों का सिरमौर प्रतीत होता है। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर जिले में तिरुपति शहर से दूर पर्वत के सुरम्य शिखर पर प्रकृति के नैसर्गिक छटा और देवस्थानम् द्वारा लगाये गये सुन्दर उपवनों के मध्य अवस्थित प्रभु का निज मन्दिर एवं मन्दिर के पार्श्व भाग का आकर्षण आज भी अपने आप में एक विलक्षण अनुभूति प्रदान करता है।

यहाँ विराज रहे प्रभु वेङ्कटेश की करुणामयी तेजस्वी और अत्यन्त सुन्दर विग्रह के सामने भाव विहवल होकर मनुष्य एक बार भी भगवान से जो माँगता है भगवान को देने में विलम्ब नहीं होता। भावुक भक्त अपनी इच्छा को प्रार्थना स्वरूप अगर भगवान के सामने प्रकट कर देता है चाहे वह इच्छा तुच्छ से तुच्छ लौकिक सुख की रहे या पारलौकिक प्रभु प्राप्ति सुख की। भगवान सङ्कोच के साथ अकाट्य रूप से पूरा करते हैं।

अत: जन साधारण से लेकर योगी संन्यासियों में समान रूप से लोकप्रिय भगवान वेङ्कटेश कलियुग में साक्षात् प्रत्यक्ष हैं इसमें कोई दो राय नहीं। एक और महत्त्वपूर्ण बात इस तीर्थराज के सम्बन्ध में वर्तमान समय में देखने को आ रही है कि भगवान वेङ्कटेश अपने श्रद्धालुओं पर तो कृपा करते ही हैं साथ ही उनके तीर्थ पर जाने वाले तीर्थ यात्रियों का मार्ग दर्शन करने वाले तथा उनकी किसी भी प्रकार की सहायता करने वालों पर भी समान रूप से अपनी कृपा बरसाते हैं। अत: इस प्रकार की भावना को ध्यान में रखते हुए हम तीर्थराज के बारे में आवश्यक जानकारी दे रहे हैं जिसका लाभ स्वयं वहाँ जाकर उठा ही सकते हैं साथ ही आप किसी का मार्गदर्शन कर भगवद्कृपा भी प्राप्त कर सकते हैं।

यात्रा का समय—दक्षिण भारत का अधिकांश भाग समुद्र तटीय होने से जलवायु प्राय: समशीतोष्ण रहा करती है, लेकिन जल का अभाव हर जगह रहता है। यों तो तिरुमला पर्वत पर भगवान की उत्तमोत्तम व्यवस्था के कारण वहाँ जल की समस्या नहीं रहती लेकिन मार्ग में एवं अन्य दर्शनीय स्थलों पर जल का अभाव वर्षा के अतिरिक्त अन्य समय में रहता है। अत: आषाढ़ से लेकर आश्विन तक का समय उत्तम रहता है। कार्त्तिक के महीने में समुद्री तूफान, आँधी वर्षा की अधिक सम्भावना रहती है। जाड़ा सामान्य ही जाड़ा के महीनों में भी रहता है। अत: अधिक सुविधा बरसात के दिनों में ही रहती है। अन्य समय में मार्ग में उपयोग हेतु जल साथ रखकर यात्रा की जा सकती है।

यात्रा के मार्ग—हम उत्तर भारतीयों के दक्षिण भारत में स्थित प्रभु वेङ्कटेश के दर्शन करने के लिए सामान्यतया तीन रेल मार्ग है—

(१) पटना या गया से हावड़ा या खड़गपुर से पुरी होकर।

(२) पटना या गया से वाराणसी नागपुर होकर।

(३) गया से वोकारो राँची विशाखापट्टनम होकर।

(क) पटना या गया से ट्रेन द्वारा पुरी के लिए रेलगाड़ी उपलब्ध है। जगन्नाथ भगवान का दर्शन-पूजन कर पुरी से सीधा तिरुपति या खोरदारोड से मद्रास जाने वाली किसी ट्रेन के द्वारा मद्रास से अथवा गुडूर जंक्शन से तिरुपति ट्रेन अथवा बस द्वारा जाया जा सकता है। वर्तमान समय में गया-पटना से कई रेलगाड़ियाँ पुरी जाती हैं।

(ख) पटना या गया से हावड़ा होते हुए मद्रास अथवा गुडूर जंक्शन से रेलगाड़ी या बस द्वारा तिरुपति पहुँचा जा सकता है।

(ग) पटना या गया से सीधा मद्रास के लिए कई रेलगाड़ियाँ जाती हैं, जिससे मद्रास अथवा गुडूर अपनी सुविधानुसार उतरकर तिरुपति जाया जा सकता है।

(घ) पटना से (राजेन्द्र नगर) से सीधा तिरुपति के लिए वाराणसी, नागपुर, विजयवाड़ा होते हुए तिरुपति रेलगाड़ी जाती है। जिसके द्वारा सीधा तिरुपति जाया जा सकता है।

(ङ) बोकारो से प्रतिदिन एक रेलगाड़ी राँची, विशाखापट्टनम होकर चेन्नई को जाती है। इस गाड़ी को दिन में ११ बजे बोकारो या दो बजे राँची सुविधानुसार पकड़कर दूसरे दिन रात्रि में दो बजे गुडूर जं० उतर कर गुडूर से बस या रेल से तिरुपति जाया जा सकता है।

जिन यात्रियों को मार्ग में अवस्थित अन्य छोटे बड़े तीर्थों और दर्शनीय स्थलों का दर्शन करते जाना है। वे सड़क मार्ग से भी अपनी निजी गाड़ी या किराये की यात्रियों की संख्या अनुसार अनुबन्धित गाड़ी से (सड़क मार्ग) से भी यात्रा कर सकते हैं। लेकिन सड़क मार्ग से यात्रा करने से समय अधिक लगेगा साथ ही रेलमार्ग की अपेक्षा व्यय भी अधिक होगा।

वायु मार्ग

भारत के किसी भी शहर से चेन्नई वायु मार्ग से सीधा जुड़ा है। वायु मार्ग से चेन्नई जाकर वहाँ से तिरुपति की दूरी मात्र १२० किलो मी० है। भगवान का दर्शन छुट्टी के दिनों में अधिक भीड़ होने के कारण अधिक समय में होता है। शुक्रवार को भगवान का उत्सव दिन होने से प्राय: उस दिन भी अधिक भीड़ होती है। बुधवार के अपराह्न से शुक्रवार तक भगवान के वेश-भूषा और अलङ्कार तीन बार बदले जाते हैं। बुधवार से शुक्रवार का दर्शन विविध मनोहारी भेष का होता है। सोमवार से बुधवार तक प्राय: कम भीड़ रहा करती है।

तिरुमला पर्वत पर प्रभु के निज मन्दिर के पूर्व स्वामीपुष्करिणी तीर्थ में स्नान एवं पुष्करिणी के वायु कोण पर स्थित श्री आदि वाराह के दर्शन करने की परम्परा प्रचलित है। आकाशगङ्गा तीर्थ, एवं पापविनाशनम् आदि तीर्थों में स्नान किया जाता है। तिरुपति शहर में स्टेशन के बगल में ही गोविन्दराज भगवान का मन्दिर भी दर्शनीय है। तिरुपति शहर से पाँच किलोमीटर दूर तिरुचानूर में भगवान की अर्धाङ्गिनी भगवती लक्ष्मीजी का मन्दिर अवस्थित है। यहाँ लक्ष्मीजी को पद्मावती के नाम से पुकारा जाता है और प्रभु के प्रचलित चित्रपट में इन्हीं ममतामयी माँ का चित्र देखने को मिलता है। इनका दर्शन भी करने की अवश्य परम्परा है।

तिरुमलेश भगवान श्रीवेङ्कटेश की यात्रा के

क्रम में वैकुण्ठवासी अनन्त श्रीस्वामीजी महाराज (सरौती स्थानाधीश) भूतपुरी काँची, श्रीरङ्गम, वेङ्कटगिरि का विशेष उल्लेख करते थे और भगवान वेङ्कटेश के दर्शन के साथ-साथ भूतपुरी (श्रीपेरुम्बूदूर) जाकर श्रीभाष्यकार रामानुज स्वामी के जन्म-भूमि में भगवान भाष्यकार के मन्दिर का दर्शन भी किया करते थे। यह स्थान चेन्नई से काँचीपुरम् के बीच में स्थित है। काँचीपुरम् में वरदराज भगवान का विशाल और भव्य मन्दिर है। यहाँ के भगवान की मङ्गलमयी मूर्ति बड़ी ही मनोहारी दिखाई देती है। इस काँचीपुरी नगरी में अठारह दिव्य विष्णु क्षेत्र हैं तथा आधी नगरी शिव काँची के नाम से बिख्यात है। यहाँ कामाक्षी देवी का मन्दिर तथा आदि शङ्कराचार्य जी का कामकोटि पीठ भी है।

काँची से ही लगभग तीन सौ किलोमीटर दक्षिण चेन्नई त्रिचनापल्ली लाइन पर त्रिचनापल्ली से पाँच किलो मीटर पहले श्रीरङ्गम् में भगवान श्रीरङ्गनाथ का विश्व का वृहत्तम मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर को एक हजार वर्षों तक श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के केन्द्र के रूप में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तथा जिसे आज भी भू वैकुण्ठ के रूप में जाना जाता है।

●

तिरुमल यात्रियों के लिए सूचना

कलियुग में वैकुण्ठ के नाम से सुविख्यात एवं अतिप्राचीन तिरुमल पुण्य क्षेत्र में विराजमान दिव्य भगवान बालाजी प्रत्यक्ष देव हैं। आप सङ्कटमोचक हैं, अनाथ रक्षक हैं, वाञ्छित कामनाओं की पूर्ति करने वाले दयामय हैं। इस क्षेत्र और भगवान का प्राशस्त्य यों वर्णित है—

वेङ्कटाद्रि समं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति।।

प्रतिदिन देश के दूर-सुदूर प्रान्तों से हजारों की संख्या में यात्री कलियुग के प्रत्यक्ष देव श्रीवेङ्कटश्वर स्वामी के दर्शनार्थ तिरुमल पधारते हैं। उनकी यात्रा को सुखमय बनाने के उद्देश्य से तिरुमल तिरुपति देवस्थान द्वारा आवास, दर्शन आदि सुविधायें दी जा रही हैं; परन्तु दिन-ब-दिन इन यात्रियों की संख्या में वृद्धि होने के कारण इन सुविधाओं में कमी दिखाई दे रही है। सच कहें तो तिरुमल में लगभग ५,५०० काटेजों में पच्चीस हजार यात्रियों को मात्र ही आवास की सुविधा उपलब्ध है। दो क्यू काम्प्लेक्स, यात्रियों की सुविधा भवन-समुदाय को मिलायेंगे तो और पन्द्रह हजार, अर्थात् कुल चालीस हजार यात्रियों को ठहरने की व्यवस्था है। भगवान का दर्शन ही भक्तों के लिए मुख्य है। मन्दिर में प्रतिदिन मनायी जाने वाली सेवाओं व कैङ्कर्यों के लिए समय निकालने पर बीस घण्टे ही भगवान के दर्शन के लिए भक्तों को समय मिलने की सम्भावना है। यही नहीं, तिरुमल में अब पीने का पानी, भोजन व सफाई आदि की सुविधायें चालीस हजार यात्रियों के लिए ही पर्याप्त है।

परन्तु कुछ विशेष पर्व दिनों में चालीस हजार से अधिक यात्री तिरुमला आ रहे हैं और अनेक तरह के दुःखों का अनुभव कर रहे हैं। बाल-बच्चों के साथ उनकी बाधायें अवर्णनीय हैं। अनूह्य परिस्थितियों में मलमूत्र विसर्जन करते हैं। इससे तिरुमल क्षेत्र की सफाई व पवित्रता नष्ट होने की

सम्भावना दिखाई दे रही है। भीड़ की अधिकता के कारण अनेक सन्दर्भों में यात्रियों को आवास, पानी और भोजन आदि का न उपलब्ध होना, दर्शन में देरी के कारण कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। भगवान का मन्दिर, प्रसाद वितरण केन्द्र, अन्नदान, क्यू-काम्प्लेक्स, कल्याणकट्टा आदि प्रदेशों में घण्टों-घण्टों प्रतीक्षा करते रहते हैं। यही नहीं, अगर तिरुमल में वाहनों की संख्या बढ़ेगी, तो जलवायु में कालुष्य बढ़ने की सम्भावना है। फिर अतिरिक्त भवनों का निर्माण किया जाय, तो वृक्ष सम्पत्ति घट जायेगी। इससे प्रकृति में समानता नष्ट हो जायेगी।

इन सभी विषयों को ध्यान में रखकर देव-स्थान ने सुचारु योजना बनायी है। कई भक्तों ने भी सूचित किया कि प्रत्येक भक्त को तिरुपति में सुदर्शन टोकन बाँधकर, प्रतिदिन चालीस हजार यात्रियों को मात्र ही पर्वत पर जाने की अनुमति दी जाय। इनको आवास की सुविधा तिरुपति में दी जायेगी। अगर यहाँ ठहरें, तो आसपास के प्रमुख क्षेत्रों का भी संदर्शन कर सकते हैं। इस प्रकार ४० हजार यात्रियों को ठहरने या दर्शन करने का मौका मिलेगा। सभी को सुविधायें उपलब्ध होंगी। लोगों की भीड़ अधिक हो जायेगी, तो सफाई, पवित्रता व सुरक्षा की समस्यायें उत्पन्न होंगी। तिरुपति में टोकन देने से इन समस्याओं का समाधान मिलेगा। देवस्थान का विचार है कि इस योजना को स्तरों में लागू किया जाय।

●

देवस्थानम् के कार्य

(१) यात्रियों और भक्तों के हित के लिए अस्पताल और दवाखानों का निर्माण करना और उनका निर्वहन करना।

(२) सब तरह के यात्रियों के उपयोगार्थ धर्मशालायें व अतिथिगृहों का निर्माण करना।

(३) यात्रियों के लिए स्वास्थ्यकर पानी का प्रबन्ध करना, सफाई का ध्यान रखना।

(४) देवस्थान की पशुसम्पदा के लिए पशुवैद्यशाला को खोलना।

(५) धार्मिक कार्यों व देवस्थान के उत्सवों में भाग लेने लायक अर्चकों, अध्यापकों और वेद-परायण

●

श्रीवेङ्कटेश्वर की भक्ति से मोक्ष

भगवान वेङ्कटेश्वर की भक्ति आठ प्रकार की मानी गयी है—(१) भगवान के भक्तों के प्रति स्नेह, (२) भगवद्भक्तों की पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करना, (३) स्वयं भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा करना, (४) अपने शरीर की समस्त चेष्टाएँ भगवान के लिए ही करना, (५) भगवान के माहात्म्य की कथा में रुचि रखना और इसे सुनने में आदर का भाव होना, (६) अपने नेत्र और शरीर में भगवद्भक्ति एवं भगवत्प्रेम जनित विचार का स्फुरण होना, (७) भगवान श्रीनिवास का निरन्तर स्मरण करना तथा (८) वेङ्कटाचल निवासी भगवान श्रीनिवास की शरण लेकर ही जीवन धारण करना। ऐसी आठ प्रकार की भक्ति यदि किसी म्लेच्छ में भी हो तो वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ●

विरजा नदी

यह नदी श्रीनिवास के पाँव के नीचे से बहती है। इस नदी के ऊपरी भाग में श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी का विग्रह खड़ा है। श्रीस्वामी के दूसरे प्राङ्गण के पश्चिम भाग में उग्राण के सामने भूमि के समतल पर पानी पाया जाता है। यह एक छोटे कुएँ की तरह दीख पड़ता है। इसका जल सिर पर छिड़कने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पर्वत प्रार्थना एवं पापनाशन तीर्थ

वेङ्कटाचल पर चढ़ने के पूर्व पुण्यवर्द्धक पर्वत की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—हे स्वर्णाचल! हे महापुण्यमय सर्वदेवसेवित गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं, उन्हीं आपके ऊपर मैं अपने दोनों पैरों से चलूँगा। मुझ पापचेता पुरुष के इस पाप को आज कृपा पूर्वक क्षमा करें। शिखर पर निवास करने वाले भगवान लक्ष्मीपति का आप मुझे दर्शन कराईये। इस प्रकार पर्वत श्रेष्ठ वेङ्कटाचल की प्रार्थना करके मनुष्य उस पर धीरे-धीरे चलें। स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में नियम पूर्वक स्नान करे।

तदनन्तर उस पर्वत के ऊपर जो तीर्थों में श्रेष्ठ और पवित्र पापविनाशन नामक तीर्थ हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य फिर गर्भ में नहीं जाता, उसके पास जाकर उसमें स्नान करना चाहिये।

भोग श्रीनिवास की महिमा

चोल राजाओं के किसी सामन्त शासक की पत्नी समवाई नामक भक्तिन ने श्रीबालाजी वेङ्कटेश्वर की एक रजत मूर्ति बनवाई और उसे भोग श्रीनिवास के नाम से तिरुमल मन्दिर में प्रतिष्ठित कराई। बस, उस दिन से इस मन्दिर की मानों काया पलट हो गयी। श्रीनिवास के नाम पर मानों एक अचञ्चल वैष्णव मुद्रा ही छोड़ दी गयी। जो हो उस दिन से लेकर मन्दिर की नित्य अर्चा व आराधना में एक निश्चित क्रम जारी हुआ।

कोल्हापुर

कुर्दूवाड़ी से पंढरपुर जाने वाली लाइन मीरज स्टेशन तक जाती है। मीरज से सांगली-मीरज कोल्हापुर लाइन पर कोल्हापुर ३६ मील पड़ता है। कोल्हापुर पुराण प्रसिद्ध करवीर क्षेत्र है। यहाँ लक्ष्मी महालक्ष्मी का नित्य निवास माना गया है।

महालक्ष्मी-कोल्हापुर नगर में पुराने राजमहल के पास खजाना घर है। उसके पीछे महालक्ष्मी का विशाल मन्दिर है। इसे लोग अम्बाजी का मन्दिर भी कहते हैं। मन्दिर का घेरा बहुत बड़ा है। उस घेरे में महालक्ष्मीजी का निज मन्दिर है। मन्दिर का प्रधान भाग नीचे पत्थरों से बना है। मन्दिर के पास पद्मसरोवर है। यहाँ जगन्नाथजी आदि देव-मन्दिर है। ●

श्रीबालाजी का स्थान

श्रीबालाजी (श्रीवेङ्कटेश्वर भगवान) का स्थान जिस पर्वत पर है उसे तिरुमल या वेङ्कटाचल कहते हैं। तिरु = श्रीमान्, मल = पर्वत अर्थात् श्रीयुक्त पर्वत। इसी प्रकार वें = पाप, कट = नाशक अर्थात् पाप नाशक पर्वत। वेङ्कटाचल पूरा पर्वत भगवत्स्वरूप माना जाता है। कहते हैं, साक्षात् भगवान शेष पर्वत रूप में स्थित हैं। ग्रन्थों में ऐसा वर्णन मिलता है कि प्राचीन काल में प्रह्लाद तथा राजाअम्बरीष इस पर्वत को नीचे से ही प्रणाम करके चले गये थे। पर्वत को भगवत्स्वरूप मानकर वे ऊपर नहीं चढ़े थे। जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानुजाचार्यजी पर्वत पर दण्डवत् प्रणाम करते हुए गये थे। पर्वत के नीचे पहला गोपुर बहुत ऊँचा बना है। गोपुर के पास श्रीबालाजी के पादुका के चिह्न बने हैं। ●

आन्ध्र प्रदेश के काकिनाडा शहर की अदालत में श्रीनिवास का गवाही देना

काकिनाडा आन्ध्रप्रदेश का एक बड़ा शहर है। यह शहर समुद्र के किनारे बसा हुआ है और यह एक पुराना बन्दरगाह भी है। यह पूर्व गोदावरी जिले का मुख्य नगर है और एक बड़ा व्यापार-केन्द्र भी है।

बहुत दिन पहले की बात है कि काकिनाडा नगर में सेठ नल्लप्पा नाम का एक बड़ा बनिया रहता था। उसका बड़ा व्यापार चलता था। वह बालाजी (श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी) का बड़ा भक्त था और अनेक दान-पुण्य किया करता था। उसकी पत्नी राधा बड़ी पतिव्रता नारी थी। इनके अच्छे गुणों के कारण चारों तरफ इनकी प्रशंसा होने लगी।

एक दिन सेठ नल्लप्पा अपनी पत्नी राधा के साथ एकान्त में बैठा हुआ था। उस समय राधा ने पति से यों कहा—स्वामि! भगवान की कृपा से हमको सब कुछ प्राप्त है और किसी तरह की कमी नहीं है। हम सुख-शान्ति का जीवन बिताते हैं। लेकिन हमारे पीछे हमाने वंश का उद्धार करने वाला कौन है? करुणासागर श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी हमें पुत्र-सन्तान देकर क्यों अनुगृहीत नहीं किए? हमने तो सब आवश्यक व्रतों का पालन किया था। अनेक दान पुण्य किये थे। मगर हमारा दु:ख दूर नहीं होता। भगवान, भगवान कहते हुए हमने दान-पुण्य के कार्यों में वह सब खर्च कर डाला जो कुछ हमारे पास रहा। आपने जो बातें बतायीं वे सब झूठी-सी मालूम पड़ती हैं। मुझे उन बातों पर विश्वास नहीं होता।

राधा की बातें सुनकर सेठ नल्लप्पा ने हँसते हुए इस तरह जवाब दिया—राधा! तुम्हारा कहना बिलकुल भूल है। तुम व्यर्थ ही मेरे प्रभु श्रीवेङ्कटेश्वर की निन्दा करती हो जो बड़ा अन्याय है। वह कभी सम्भव नहीं है कि भगवान अपने सच्चे भक्तों की रक्षा न करे। यदि हमें अपने पूर्व जन्म के दोषों के कारण पुत्रसन्तान प्राप्त नहीं हो तो भगवान की निन्दा क्यों करें। तुम अटल भक्ति के साथ श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी (बालाजी) की पूजा करो और अवश्य तुम्हारी कामना सफल होगी। भगवान विष्णु स्वयं श्रीवेङ्कटेश्वर का अवतार लेकर शेषाद्रि पर असमान तेज से विराजित हैं।

राधा पतिदेव के वचनों पर ध्यान देकर श्री वेङ्कटेश्वर स्वामी की भक्तिपूर्वक पूजा करने लगी। सेठ नल्लप्पा की भक्ति शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह दिन व दिन बढ़ती गयी। इस तरह कुछ काल बीत गये और दुर्भाग्य से नल्लप्पा का व्यापार घट गया और वह गरीब बन गया। आखिर उसकी गरीबी यहाँ तक बढ़ी कि उसको अपने और अपनी पत्नी का पेट भरना भी मुश्किल हो गया। दरिद्रता के कारण राधा उपवास करती हुई दुबली बन गयी। वह दु:खित होकर पति से बोली—'हे स्वामि! हम बड़ी भक्ति से भगवान की आराधना करते बहुत गरीब बन गये। उपवास करके निर्बल हो गये। इस तरह जीते हुए दु:खों को उठाने से मर जाना कहीं अच्छा है। मैं तो उपवास करती हुई भूख की ज्वाला नहीं सह सकती'।

सेठ नल्लप्पा राधा की बातों को सुनकर बहुत दु:खित हुआ। फिर भी भगवान पर विश्वास नहीं छोड़ सका। वह यथा रीति भक्तिपूर्वक बालाजी की पूजा करता रहा। उसने अपनी पत्नी राधा से कहा—हे राधा! तुम दु:ख मत करो। जिस तरह मास के एक पक्ष में प्रकाश और दूसरे पक्ष में अन्धकार रहते हैं उसी तरह हम मनुष्यों के जीवन

में कुछ दिन सुखमय होते हैं तो और कुछ दिन दुःखमय होते हैं। इसलिए हमें सुख व दुःख दोनों का समान रूप से अनुभव करना ही चाहिए। भगवन श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी तो सर्वव्यापक हैं और तब यह कैसे सम्भव है कि उन्हें हमारे कष्टों का पता नहीं लगे। मेरा पक्का विश्वास है कि यदि हम धीरज बाँधकर दृढ़ भक्ति से भगवान की पूजा करते रहे तो वही, करुणा की मूर्ति हमें कोई उचित मार्ग दिखाकर हमारी रक्षा करेंगे। इसलिए हम दोनों एक साथ श्रीबालाजी के पद्मकमलों की पूजा तथा सेवा करते रहें और हमारी इच्छा अवश्य सफल होगी।

सेठ नल्लप्पा और राधा दोनों भगवान का ध्यान करते हुए सो गये। थोड़ी देर बाद नल्लप्पा जाग उठा। उसका मन सोच विचार में डूब गया। वह यों सोचने लगा—'अब मैं क्या करूँ और जीवन बिताने का उपाय क्या है। उसने निश्चय किया कि मुझे अब फिर कुछ पूँजी लगाकर व्यापार चलाना चाहिए और धन जमा करके दान-पुण्य करना चाहिए। लेकिन अब देखूँ तो मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। अच्छा, कासिम मेरे वाल्यकाल का मित्र है जो अब बड़ा धनवान बना हुआ है। मैं उसके पास जाकर दो हजार रुपयों का कर्ज माँग लूँ। कासिम तो अच्छा आदमी है और वह जरुर मेरी इच्छा सफल करेगा'। ऐसा सोचकर वह फिर सो गया।

नल्लप्पा सबेरे जाग उठा और स्नान आदि समाप्त करके तिलक लगाया। फिर उसने भक्ति-पूर्वक बालाली की पूजा करके अपनी पत्नी से कहा—'राधा! मैं चाहता हूँ कि अपने मित्र कासिम साहब से दो हजार रुपये कर्ज में लेकर शुभ समय में व्यापार शुरु करूँ'। यह सुनकर राधा बहुत खुश हुई और इस इच्छा से बालाजी का ध्यान करती रही की अपने पति का कार्य सफल हो जाय।

सेठ नल्लप्पा हरि का स्मरण करते हुए कासिम साहब के घर जा पहुँचा। कासिम अपने वाल्य मित्र के अपूर्व आगमन से अधिक हर्षित हुआ और यों बोला—'नल्लप्पा! आज अपने बाल्यमित्र तुमको देखकर मैं बहुत खुश हुआ। मैं समझता हूँ आप किसी एक जरुरी काम पर आये होंगे। बताइये मैं आपकी कौन-सी सेवा कर सकूँ'।

नल्लप्पा ने बड़ी नम्रता से कहा—कासिमजी! बचपन में हम दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ते थे और साथ-साथ कई तरह के खेल-खेला करते थे। बाल्यकाल की अपनी निकट मित्रता के आधार पर आज आप से मदद माँगने आया हूँ। भगवान की कृपा से आप बड़े धनवान बने और मैं अपने पाप-कर्मों के फल से गरीब बना। इस समय आप मुझे दो हजार रुपये का कर्ज देने की कृपा करें तो मैं उस धन से व्यापार चलाकर शीघ्र ही आपका कर्ज चुकाऊँगा। आप अपने इस मित्र की सहायता करने की कृपा करें।

कासिम ने मित्र की बातों को सुना और थोड़ी देर तक सोचकर बोला—'नल्लप्पा जी! आपको दो हजार रुपयों का कर्ज अवश्य दूँगा और आपको उस धन का फीसदी एक रुपये का मासिक सूद देना पड़ेगा। इस हिसाब से सूद देना आपको मंजूर है तो करारनामा लिखकर दीजिए और दो हजार रुपये ले जाइये'।

यह सुनकर नल्लप्पा बहुत खुश हुआ और कहा—'कासिम साहब! आप बड़े दयालु हैं। आपकी शर्तें मुझे मंजूर हैं'। ऐसा कहकर नल्लप्पा ने करार-नामा लिखकर दे दिया। कासिम ने नल्लप्पा को दो हजार रुपये देकर यों कहा—'नल्लप्पा जी! मैंने अब जिस तरह आपको धन दिया है, उसी तरह आप भी सूद के साथ मेरा धन शीघ्र लौटा दें'।

सेठ नल्लप्पा वह धन लेकर अपने घर आया। राधा ने पति को देखते ही बड़ी आतुरता से पूछा कि आप जिस काम पर गये थे वह सफल हुआ या नहीं? नल्लप्पा ने मुस्कुराते हुए कहा कि भगवान

के भक्तों का काम कभी असफल नहीं होता, उनको हमेशा विजय ही प्राप्त होती है। श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी ने मित्र के हृदय में प्रवेश करके धन दिलाया है।

ऐसा कहकर उसने राधा को रुपयों की थैली दिखायी तो वह बहुत खुश हुई और उस थैली को भगवान श्रीनिवास के पास रखकर भक्तिपूर्वक स्तुति करती हुई आरती उतारी। सेठ नल्लप्पा ने वेद तथा शास्त्र के पण्डित ब्राह्मण को बुलवाकर अपना नया व्यापार शुरु करने के लिए शुभ लग्न निश्चित कराया और उस शुभ समय में व्यापार शुरु करके स्वल्प लाभ लेता रहा। इसके न्याय-सम्मत व्यापार को देखकर बहुत से नगरवासी सन्तुष्ट हुए और इसी के साथ व्यापार बढ़ाने लगे। भाग्य के बल से नल्लप्पा का व्यापार दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया और वह अनतिकाल में बड़ा धनवान बन गया। वह पत्नी के साथ हमेशा भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगा और पहले की तरह अनेक दान-पुण्य करता रहा।

●

भक्त नल्लप्पा ने कर्ज लौटाया

एक दिन राधा पति से बोली—'स्वामिन्! हमारे इस तरह फिर धनवान बनने का मूल कारण तो कासिम हीं हैं। भगवान की बड़ी कृपा से हम धनवान हो गये। इसलिए आपने कासिम के पास से जो कर्ज लिया था उसे सूद सहित चुका दीजिए'। नल्लप्पा ने राधा की बात मान ली और कर्ज का सारा धन लेकर कासिम के घर चला। कासिम सेठ से पूछा कि क्या और कुछ धन की सहायता माँगने आये हैं। नल्लप्पा ने कहा—'आजी! आपकी कृपा से मैं धनवान हो गया। आपने मुझे दो हजार रुपयों का जो कर्ज दिया था, उसे ब्याज सहित चुका देने के लिए गिनकर लाया हूँ। कृपया वह धन ले लीजिए'। ऐसा कहकर नल्लप्पा ने फल, पुष्प तथा ताम्बूल के साथ सारा धन कासिम के हाथ में रख दिया। कासिम सारा धन सूद के साथ खूब गिनकर घर के भीतर ले चला और तिजोरी में छिपा लिया। उसने लालच में पड़कर इस तरह सोचा—सेठ नल्लप्पा का मुझे धन वापस देना किसी ने नहीं देखा। यदि वह करारनामा माँगता तो कल, परसों देने की बात कहकर टाल दूँगा और इतने में उस पर उक्त रकम के लिए अदालत में नालिश करूँगा। ऐसा करने पर मुझे और भी दो हजार रुपये सूद और अदालती खर्च के साथ मिल जायेंगे। यह अच्छा उपाय है।

ऐसा सोचकर कासिम बाहर आया और नल्लप्पा को अभी बैठा हुआ देखकर पूछा कि आप अभी मेरी राह देखते हुए क्यों बैठे रहे। नल्लप्पा ने जवाब दिया—'कासिम साहब! मैंने कर्ज का धन सूद के साथ लेकर पूरा-पूरा चुका दिया है। इसलिए आप कृपया करारनामा लौटा दें'। यह सुनकर कासिम ने मुस्कुराते हुए कहा—सेठजी! आपका दिया हुआ करारनामा कहीं रखकर भूल गया। मैं उसे ढूँढकर अपने नौकर के जरिए आपको भेज दूँगा। आप मेरी बात पर विश्वास कीजिए। मैं कभी धोखा न दूँगा'। यह सुनकर नल्लप्पा चुपचाप अपने घर चला गया पर करारनामा की चिन्ता उसे सताती रही।

सेठ की पत्नी ने पति का उदास मुँह देखकर कहा—'क्यों जी, आपका मुँह क्यों मलीन है? क्या धन खो गये हैं? आप इसके लिए क्यों चिन्ता करें? हमारे पास जो धन है उसमें से फिर धन ले जाइये और कासिम का कर्ज चुका दीजिए'।

नल्लपा ने कहा—राधा! धन नहीं खो गया। वह कासिम साहब की तीजोरी में सुरक्षित है। लेकिन.....। इतना कहकर चुप रहा। यह देखकर राधा ने पति से पूछा कि आप क्यों चुप रह गये और जो हुआ सो जल्दी कहिए। फिर नल्लप्पा ने कहा—राधा मैंने करारनामा वापस माँगा तो उन्होंने जवाब दिया कि उसे कहीं रखकर भूल गया हूँ और उसे ढूँढ़कर फिर भेज दूँगा। उसे मेरे धन चुकाते समय कोई भी तीसरा व्यक्ति वहाँ उपस्थित नहीं था। अब मेरी चिन्ता यही है कि अगर कासिम साहब ऐसा कहें कि मुझे धन नहीं मिला तो तब मैं क्या करूँ। गवाही देने वाला भी कोई नहीं है।

पति का कहना सुनकर राधा ने कहा—'स्वामि! कासीम साहब जो आपका बाल्यमित्र ठहरे आपको क्यों धोखा देंगे? उन्होंने आपका विश्वास करके आपको दो हजार रुपये दिये थे। इसलिए आप व्यर्थ उन पर सक करके दु:ख न करें'।

नल्लप्पा ने राधा की बातें सुनकर धीरज बाँधे किसी तरह से एक सप्ताह बिताया। मगर कासिम ने करारनामा नहीं भेजा। सेठ की चिन्ता दिन व दिन बढ़ती ही गयी। एक दिन सबेरे सेठ नित्य कर्मों का अनुष्ठान, तिलक-धारण आदि पूरा करके कासिम साहब के घर चला और उससे करारनामा लौटा देने की सविनय प्रार्थना की। कासिम ने फिर मुस्कुराते हुए कहा—'सेठ जी! मैं ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया मगर करारनामा तो नहीं मिला और एक सप्ताह के भीतर वह पत्र ढूँढ़कर जरुर भेज दूँगा। आप व्यर्थ मेरे घर आने की तकलीफ न उठायें।

नल्लप्पा यह जवाब सुनकर खिन्न हुआ और घर जा पहुँचा। बड़ी मुश्किल से दूसरा सप्ताह भी बिताया। लेकिन कासिम के पास से करारनामा नहीं मिला। जब मनुष्य निरुपाय होता है तब भगवान की शरण में चलता है। बेचारे नल्लप्पा भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर की मूर्ति के सामने खड़े होकर इस तरह प्रार्थना करने लगा—हे दीनरक्षक! हे देवदेव! जब मैंने कासिम साहब को धन वापस कर दिया तब किसी ने नहीं देखा; परन्तु ऐसी कौन-सी बात है जो तुमको नहीं मालूम है। तुम सर्वान्तर्यामी हो। तुमको छोड़कर मेरा साक्षी और कोई नहीं है। अगर कासिम साहब मुझसे फिर वह धन माँगे तो मैं क्या करूँ? हे भगवान! तुम ही मेरी रक्षा करो'। ऐसी प्रार्थना करके फिर अपनी पत्नी राधा से कहा—'राधा! अब मैं कासिम साहब के घर जाकर उससे तकाजा करके करारनामा माँग लाऊँगा'।

ऐसा कहकर नल्लप्पा तेजी से कासिम के घर चला और कहा—'कासिम साहब! मैंने तुमसे जो कर्ज लिया था उसे पूरा चुका दिया था। आपने करारनामा मुझे वापस नहीं दिया जो बड़ा अन्याय है। आप बड़े धर्मपरायण हैं। कृपा करके मेरा करारनामा वापस कर दीजिए'।

कासिम ने पूछा तुम्हारा साक्षी कौन है

कासिम ने क्रोध में आकर कहा—'सेठ जी! तुमने मुझसे जो कर्ज लिया था उसे चुकाये बिना करारनामा वापस माँगना न्यायसम्मत नहीं है। तुम कहते हो कि सूद के साथ कर्ज पूरा-पूरा चुका दिया। पर यह कहो कि उसका साक्षी कौन है? क्या तुम मुझे धोखा देना चाहते हो? सावधान! मैं और एक सप्ताह की अवधि देता हूँ। इसके अन्दर दो हजार रुपये का कर्ज ब्याज अदा करो। नहीं तो अदालत में नालिश करूँगा।

यह सुनकर नल्लप्पा ने बड़े क्रोध में आकर कहा—रे दुष्ट! मैंने ब्याज सहित कर्ज का धन पूरा-पूरा चुका दिया था। लेकिन ऐसा समझकर कि

कोई साक्षी नहीं है, अन्याय करने को तैयार होते हो। यह जान लो कि भगवान सर्वव्यापी हैं जो सबका साक्षी है और वह न्याय अन्याय सब कुछ देखता रहता है। तुम्हारा यह झूठा व्यवहार कभी नहीं छिप सकेगा। मेरा करारनामा वापस कर दो और अपना चरित्र पवित्र रखो।

कासिम साहब ने अपनी दाढ़ी को अङ्गुलियों से संवारते हुए नल्लप्पा की तरफ क्रोध भरी दृष्टि से देखकर कहा—'अरे बदमाश! तुमने मुझसे जो कर्ज लिया था उसे चुकाने को कहा तो तुम कितने साहस से कहते हो कि मैंने कर्ज पूरा-पूरा चुका दिया। न मालूम अब तक तुमने कितने लोगों को इस तरह धोखा दिया है'। ऐसा कहकर उसने अपने नौकर अमीर को बुलाया और नल्लप्पा को बाहर ढकेल देने का हुक्म दिया। अमीर ने नल्लप्पा को बाहर ढकेल दिया। नल्लप्पा नीचे गिर पड़ा तो उसे बड़ी चोट लगी और खून बहने लगा। बेचारा वह दर्द से कराहता हुआ घर पहुँचा। राधा अपने पति को इस हालत में देखकर हैरान हो गयी और उनका शीतल उपचार किया। नल्लप्पा ने राधा से कहा—'राधा! न्याय कहाँ है? दुष्ट कासिम ने ऐसा कहकर मुझे ढकेलवा दिया कि तुमने कर्ज का धन नहीं चुकाया है। अब स्वामी श्रीवेङ्कटेश्वर को छोड़कर हमारी रक्षा करने वाला और कोई नहीं है'।

कासिम साहब ने धन के लालच में पड़कर नल्लप्पा से और भी दो हजार रुपये कमाने की इच्छा से अदालत में नालिश कर दिया। अदालत के अधिकारियों ने कानून के अनुसार वादी कासिम को और प्रतिवादी नल्लप्पा को तारीख ८-१०-१८०८ को अदालत में हाजिर होने के लिए समन भेज दिया। कासिम साहब समन पाकर बड़ी खुशी से उस तारीख का इन्तजार करता रहा। नल्लप्पा अपनी पत्नी के साथ भक्तिपूर्वक श्रीवेङ्कटेश्वर का ध्यान करता रहा। सत्यवान नल्लप्पा पर जो झूठा अभियोग चलाया गया है इसका समाचार पाकर नगरवासी चकित हो गये और दस तारीख की निरीक्षा करते रहे। अदालत में हाजिर होने का दिन आया। उस दिन को नल्लप्पा बड़े सबेरे उठा और स्नान करके तिलक धारण किया। उसने भक्तिपूर्वक बालाजी की पूजा करके तीर्थ प्रसाद को लिया और ठीक ग्यारह बजे अदालत में हाजिर हो गया। इस मुकदमें के विषय में अदालत वालों का निर्णय सुनने के लिए नगरवासियों की बड़ी भीड़ अदालत के चारों तरफ जमा हो गयी। जज आकर अपने आसन पर बैठ गये। वादी और प्रतिवादी दोनों के नाम बुलाये गये। वे जज के सामने आकर खड़े हुए। प्रेक्षक लोग निस्तब्धता से देखते रहे।

न्यायाधीश ने नल्लप्पा से यों पूछा—सेठ नल्लप्पा जी! क्या यह सच है कि तुमने महीने की सदी एक रुपये के हिसाब से सूद देने की शर्त पर कासिम साहब से दो हजार रुपये का कर्ज लेकर करारनामा लिख दिया था?

नल्लप्पा—जी हुजूर, यह सच है कि मैंने कासिम से दो हजार रुपये का कर्ज लिया और करारनामा लिखकर दे दिया।

न्यायाधीश—कई बार माँगने पर भी तुमने कर्ज नहीं चुकाया तो कासिम ने सूद और अदालती खर्च के साथ उस रकम के लिए अदालत में नालिश की। अब तुमको सरकारी कानून के मुताविक चौबीस घटों के अन्दर वह धन पूरा-पूरा यहाँ अदालत में चुका देना है। नहीं तो तुमको सजा भुगतनी है।

नल्लप्पा—न्यायाधीश! मैंने कासिम साहब से जो कर्ज लिया था उसे सूद के साथ पूरा चुका दिया है।

न्यायाधीश ने प्रतिवादी कासिम को बुलाकर उससे कहा—कासिम! नल्लप्पा कह रहा है कि उसने तुमको कर्ज का धन पूरा चुका दिया। इस पर

तुम्हारा कहना क्या है?

कासिम—सरकार! यह सेठ नल्लप्पा दगाबाज है। आप इसके बात पर विचार कीजिए कि अगर वह मुझे कर्ज चुका देता तो वह मुझसे करारनामा क्यों नहीं ले जाता। यह लीजिए उसका लिखा हुआ करारनामा अब भी मेरे ही पास है।

न्यायाशीश (करारनामा देखकर)—सेठ जी! देखो यह करारनामा तुम्हारा ही लिखा हुआ है न?

नल्लप्पा—जी सरकार! इसको मैंने ही लिख कर दिया था।

न्यायाधीश—तुम्हारा कहना है, तुमने कासिम को कर्ज का धन चुका दिया था। भला यह बताओं कि धन चुकाते समय किसने देखा।

नल्लप्पा—सरकार! कासिम को धन देते समय भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी को छोड़कर और किसी ने नहीं देखा। धन उसको चुकाने के बाद मैंने काररनामा वापस माँगा तो उसने ऐसा कहकर टाल दिया कि मैं कहीं रखकर भूल गया हूँ, दो दिन में ढूँढ़ कर दे दूँगा। मगर आज तक मुझे करारनामा वापस नहीं किया और अन्याय से अदालत में नालिश कर दी।

न्यायाधीश—सेठ जी! कासिम को धन चुकाते समय किसी ने नहीं देखा। कोई भी साक्षी नहीं है। तुम्हारा कहना है कि भगवान साक्षी है। भगवान तो यहाँ अदालत में आकर गवाही कभी नहीं देता। इसलिए तुम्हारी बातों पर कौन विश्वास कर सकता है। कानून के अनुसार हमारा फैसला यही है कि तुमको कर्ज का धन सूद और अदालती खर्च के साथ अदा करना ही चाहिए।

नल्लप्पा—सरकार, ऐसी कोई बात नहीं है जो सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी भगवान से छिपी रह सके। मेरी बातों पर विश्वास कीजिए। मैंने कासिम का कर्ज ब्याज के साथ पूरा चुका दिया था। इसका साक्षी भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी ही हैं। आप कृपा करके श्रीवेङ्कटेश्वर को समन भिजवा दीजिए और मुकदमा मुल्तवी कर दीजिए। भगवान जरूर अदालत में हाजिर हो जायेगा और मेरी तरफ से गवाही दे देगा। आप कृपा कीजिए।

न्यायाधीश—सेठ जी! तुम यह क्या कह रहे हो? क्या तुम दिल्लगी कर रहे हो? तुम्हारी बुद्धि ठिकाने है या नहीं? तुम मनुष्य हो। तुम कहाँ और भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर कहाँ? तुम्हारा कैसा मूढ़ विश्वास है कि भगवान आकर तुम्हारा साक्षी बनेगा और गवाही देगा। तुम्हारी इन झूठी बातों पर कौन विश्वास कर सकता है?

नल्लप्पा—हे न्याय के अवतार! श्रीवेङ्कटेश्वर की बात शायद आपको नहीं मालूम है। यह प्रत्यक्ष देव हैं और साक्षात् विष्णु भगवान हैं। वे अपने सच्चे भक्तों की अवश्य रक्षा करते हैं। इसलिए आप कृपा करके श्रीवेङ्कटेश्वर के नाम समन भेज दीजिए। मेरी यह प्रार्थना सुनकर मेरा उद्धार कीजिए।

न्यायाधीश—(आप ही आप) यह सेठ बड़ा भक्त मालूम पड़ता है। अच्छा, इसकी भक्ति की परीक्षा हो जाय। (सेठ से) सेठ जी! हाँ, तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार और एक सप्ताह की अवधि देता हूँ। तारीख १५-१०-१८०८ को मुल्तवी करता हूँ और उस दिन को वादी और प्रतिवादी दोनों को अदालत में जरूर हाजिर होना चाहिए।

जो नगरवासी वहाँ आये हुए थे वे सब काना-फूसी करते हुए वहाँ से अपने घर चले गये। कासिम मुस्कुराते हुए अपने घर पहुँचा। सेठ नल्लप्पा श्रीनिवास का ध्यान करते हुए घर पहुँचा।

उस दिन से कासिम साहब ऐसा सोचकर खुश रहने लगा कि इस सेठ को गवाही देना अनहोनी बात है और मुझे अवश्य धन मिल जायेगा। वहाँ नल्लप्पा अपने घर में पत्नी राधा के साथ अन्न-पान

छोड़कर अटल भक्ति से श्रीवेङ्कटेश्वर स्वामी की पूजा करने लगा। इस तरह सात दिन बीत गये तो पति-पत्नी दोनों बहुत दुबले हो गये। उनमें चलने फिरने की शक्ति भी क्षीण हो गयी। नल्लप्पा तो निर्मल हृदय से भगवान का ध्यान करता ही रहा। सुनवाई का दिन आ गया। वे दोनों स्नान आदि करके भगवान के सामने खड़े होकर ध्यान करने लगे। नल्लप्पा में दु:ख उमड़ आया। वह दु:ख-कम्पित स्वर में यों बोला—'हे श्रीवेङ्कटेश्वर! हे दीनरक्षक! मैं तुम्हीं को अपना सर्वस्व मानकर तुम्हारी ही लगातार पूजा करता आया हूँ। तुमको छोड़कर इस दुनियाँ में मेरा रक्षक और कोई नहीं है। जब भक्त प्रह्लाद दुष्ट हिरण्यकश्यप का हिंसाकाण्ड नहीं सह सका तब उसने तुम्हारी शरण माँगी और तुमने नृसिंहावतार के रूप में उस क्रूर की हत्या करके पह्लाद की रक्षा की। दुर्योधन की भरी सभा में जब दु:शासन द्रौपदी का मानभङ्ग करने लगा तब उसका आर्तनाद सुनकर कृष्ण भगवान के रूप में तुमने उसकी मानरक्षा की। जब करिराज मगर के चङ्गुल में फँसकर नारायण, नारायण कहते हुए तुम्हारी शरण माँगी तब तुमने उसकी रक्षा की। हे परमात्मा! तुम सर्वव्यापक हो और सर्वशक्तिमान् हो। ऐसा कोई बात नहीं है जो तुमको नहीं मालूम है। कासिम साहब को मेरा कर्ज का धन चुकाना तुमसे छिपा है? हे दीनरक्षक! मेरी रक्षा करो।

ऐसा कहते हुए नल्लप्पा मूर्छित हो गया। उस समय दीनदयालु श्रीवेङ्कटेश्वर एक बूढ़े मनुष्य का रूप धर कर वहाँ उपस्थित हुए और सेठ का उपचार करते रहे। इतने में राधा वहाँ आयी और इस नये बूड्ढे को देखकर आश्चर्य चकित हो बोली—'हे दादाजी! आप कौन हैं और कहाँ रहते हैं'? मूर्छित नल्लप्पा होश में आया तो आँखों के सामने इस वृद्ध को बैठा हुआ पाया और भक्ति पूर्वक दण्डप्रणाम करके यों बोला—'महात्मन्! आप स्वयं श्रीवेङ्कटेश्वर मालूम होते हैं। हमारे भाग्यदेवता हैं। हमारे कष्टों को दूर करने के लिए आये हुए दिव्य पुरुष हैं'। बूढ़े ने कहा—'अजी मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। धूप में भूख के मारे बेचैन होकर यहाँ तुम्हारे घर आ पहुँचा। तुमको मूर्छित पाकर तुम्हारा उपचार करने लगा'।

नल्लप्पा ने दु:खपूर्ण स्वर में कहा—'स्वामिन्! आज अदालत में सुनवाई का दिन है। आज सत्य और असत्य का निर्णय होना है। मैं झूठ नहीं बोलूँगा। सब कुछ श्रीवेङ्कटेश्वर की दया पर निर्भर है। उस पर विश्वास करके उसके दिव्य चरणकमलों की लगातार पूजा करता हूँ'।

बूढ़े ने मुस्कुराते हुए कहा—'सेठ जी! श्रीवेङ्कटेश्वर परब्रह्मस्वरूप हैं। वह शरणागतरक्षक है। इसलिए तुम्हारे सच्चरित्र से सन्तुष्ट होकर वह जरुर तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम निश्चिन्त रहो और धैर्य धरकर अदालत में जाओ। तुमको जरुर विजय प्राप्त होगी'। ऐसा कहकर वह बूढ़ा वहाँ से चला गया।

सेठ नल्लप्पा तीर्थ और प्रसाद ग्रहण करने के बाद नियत समय पर अदालत में हाजिर हुआ। झुण्ड के झुण्ड नगरवासी आज अदालत का फैसला सुनने के लिए वहाँ बैठे थे। कासिम साहब इस उम्मीद से बड़ी खुशी में हैं कि जरुर विजय अपनी ही हो जायेगी।

ग्यारह बजे का समय हुआ। न्यायधीश अपनी जगह में आ बैठा। कासिम साहब और सेठ नल्लप्पा अपने-अपने नियत स्थानों में बैठे हुए थे। अदालत के चपरासी ने नियम के अनुसार श्रीवेङ्कटेश्वर के नाम लेकर तीन बार पुकारा। बस, कहीं से अचानक दिव्य तेज से जगमगाते हुए स्वामी श्रीवेङ्कटेश्वर वहाँ अदालत में जज के सामने आ खड़े हुए और निम्न प्रकार से गवाही देने लगे।

प्रभु श्रीनिवास की गवाही

'हे न्यायाधीश! सेठ नल्लप्पा ने कासिम को कर्ज का दो हजार रुपया सूद के साथ गिनकर फल-फूल के साथ सौंप दिया था। वह धन पूरा-पूरा अब भी कासिम साहब की तिजोरी में सुरक्षित है'। ऐसा कहकर श्रीवेङ्कटेश्वर अदृश्य हो गये।

उसने यह फैसला सुनाया—'रे कासिम साहब! तुमने सेठ का धन चुराकर उसको धोखा दिया, इसलिए तुम पर पाँच हजार रुपये का जुरमाना लगाया जाता है; तुरन्त वह धन चुकाओ नहीं तो कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी। भक्त नल्लप्पा को सचरित्र होने के उपलक्ष्य में सरकार की तरफ से उसे दो हजार रुपये का पुरस्कार दिया जाता है'।

न्यायाधीश का यह फैसला सुनकर सब लोग सन्तुष्ट हुए। वे नल्लप्पा की भक्ति की प्रशंसा और कासिम की दुष्टता की निन्दा करते हुए अपने-अपने घर चले गये। कासिम शरमा गया और पाँच हजार रुपया लाकर अदालत में चुका दिया। नल्लप्पा ने तेज की उदारता की बड़ी प्रशंसा की और भगवान की महिमा गाते हुए दो हजार रुपयों का पुरस्कार ले लिया। फिर घर जाकर अपनी पत्नी से यों कहा—'राधा! हमारा इष्टदेव श्रीवेङ्कटेश्वर स्वयम् अदालत में हाजिर हुआ और गवाही देकर मेरा उद्धार किया। इतना ही नहीं, उसी की कृपा से सरकार ने मुझे दो हजार रुपये पुरस्कार के रूप में दिये'। ऐसा कहकर सेठ नल्लप्पा ने वह धन राधा के हाथ में रख दिया। राधा भगवान की अपार कृपा देखकर रोमाञ्चित हो गयी। उसने अपने पति से कहा—'स्वामिन्! भगवान के अनुग्रह से आपकी सच्चाई प्रगट हुई। इसलिए श्रीवेङ्कटाचल को जायें और पुरस्कार का धन दो हजार रुपया भगवान की पूजा एवं दीन-दु:खी लोगों को अन्नदान करने में खर्च करें'। राधा के वचन सुनकर नल्लप्पा बहुत खुश हुआ और उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

एक शुभ दिन को निकालकर राधा और नल्लप्पा दोनों तिरुपति आये और वहाँ के पुण्य-तीर्थों में स्नान करके श्रीवेङ्कटेश्वर की पूजा की। फिर कई भिखमंगों को अन्नदान किया। इसके बाद जो रकम बची है, उसे श्रीबालाजी की हुंडी में डाल दी और हरि-कीर्तन करते हुए अपने गाँव लौट आये। कुछ काल बीत गया तो भगवान की कृपा से उन्हें पुत्र-सन्तान प्राप्त हुई। सेठ नल्लप्पा वेद तथा शास्त्र के पण्डित ब्राह्मणों को बुलाकर उनको दान-दक्षिणा दी और अपने बच्चे को वेङ्कटशेट्टि का नाम दिया। वह पुत्र भी बड़ा होकर श्रीवेङ्कटेश्वर का भक्त बना और बहुत सुखपूर्वक जीवन बिताया। ●

हे वेङ्कटेश! मैं आपकी शरण लेता हूँ

हे वेदान्तवेद्य! लोक व्यापार के अनुसार तुम सभी जीवों का पोषण करते रहते हो, मैं एक ओर तुम्हारी मूर्ति को अपने मन में सोचकर, स्थापित कर, तुम्हारे साथ खुले तौर पर बातें करते हुए विविध प्रकार के मनोरथों की पूर्ति करते हुए समय बिता रहा हूँ। यह तुम्हारे उद्योग (काम-धन्धे) में अलसत्व पैदा करना तो नहीं होगा न? ऐसा नहीं होगा। तुम विश्वतोमुख हो, इसलिए सबसे बातें कर सकते हो। परिपूर्ण हो, इसलिए सब जगह रह सकते हो। इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। तुम अनन्त शक्तिधर हो। अनेक महिमाओं से युक्त हो। अपरिमित उदार गुणवाले हो। अत: ऐसे तुम्हारे माहात्म्य की शरण मैं लेता हूँ। कृपया हे श्रीवेङ्कटेश्वर! उद्धार करो। ●